योगविद्या

वर्ष 4 अंक 12
दिसम्बर 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो एवं अन्दर के रंगीन फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

अनासक्ति योग

अनासक्ति योग एकता के सिद्धान्त पर आधारित है। श्रीकृष्ण ने कहा है– *मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय*– 'मेरे सिवाय किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है।' सत्य एकता में है। जीवन पर छाने वाले दुःखादि सत्य नहीं, केवल विकल्पाभास मात्र हैं। इसी सत्य को न समझना दुःखों का मूल कारण है।

जिन वस्तुओं से मोह उत्पन्न होता है, उनकी अनित्यता को समझ लेने पर ही पूर्ण वैराग्य होना सम्भव है। इसलिए भारत के सन्तों ने भौतिक जगत् की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला है। विवेकी पुरुष नाशवान् वस्तुओं से अलिप्त रहकर संसार-रूपी बन्धन से छूटने का प्रयत्न करता है। गीता बतलाती है कि यह जगत् अनित्य है, दुःखों का घर तथा अशाश्वत है। जब इस विवेक का उदय हो जाता है, तब मनुष्य इच्छाओं और आसक्ति से रहित बन जाता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 12 · दिसम्बर 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 योग द्वारा चित्त-शुद्धि
11 कलियुग का धर्म—परोपकार
16 सत्यम् वाणी
25 श्रद्धांजलि
36 गीता के आलोक में आत्मभाव
41 तंत्र और वेदान्त
44 ध्यान कैसे करें
53 श्रद्धांजलि
54 बच्चों के लिए योग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योग द्वारा चित्त-शुद्धि

योगमय जीवन जीने के अनेक रास्ते हैं। यह मार्ग साधनागम्य है। सांसारिक जीवन में हम उलझते जरूर हैं, क्योंकि यह मार्ग इन्द्रियों का है, आशाओं और आकांक्षाओं का है, किन्तु इससे घबराने की कोई बात नहीं। इसीलिए जो साधना मार्ग है, उसमें थोड़ा-सा योगाभ्यास हम कर लें, तो हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। वैसे बहुत लोग सोचते हैं कि आध्यात्मिक मार्ग में जाने के लिए जीवन में पूरा रूपान्तरण होना चाहिए, परन्तु मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ।

जीवन का रूपान्तरण एक बहुत लम्बी यात्रा है। हाँ, साधना के द्वारा जीवन में परिवर्तन धीरे-धीरे होने के बजाय तीव्र गति से होता है। जब से मनुष्य ने विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त कीं और उसका ज्ञान बढ़ा, उसने जीवन को बदलने के लिए अनेक प्रयोग किये। मनुष्य का स्वभाव और धर्म बदला, किन्तु मानवता आज तक इन प्रयोगों में ज्यादा सफल नहीं हुई है। इसका प्रमुख कारण बुद्धि रही, क्योंकि वही माध्यम था जिससे हमने व्यक्तित्व को बदलने का प्रयास किया। परन्तु मानव का आन्तरिक जीवन बदल नहीं सका। योग में इस विषय को स्पष्ट किया गया है।

मनुष्य को बदलने के लिए हमें उसकी अन्त:चेतना में शक्ति की प्रतिष्ठा करनी होगी। वह अन्त:चेतना योगाभ्यास से उजागर होती है। जिस प्रकार हम धरती को जोतकर बीज बोते हैं, उसी प्रकार बुद्धि एक बड़ी धरती है। हम धर्म को बुद्धि के द्वारा स्वीकार करते हैं; हम नैतिकता को, दिव्यता को भी बुद्धि के द्वारा स्वीकार करते हैं और अपने जीवन में उसको उतारने का प्रयत्न करते हैं, मगर मनुष्य के जीवन में एक स्थान है जो उसकी चेतना का एक आयाम है। उस आयाम को उभारे बिना कोई भी संस्कार न तो चिरंजीवी बन सकता है और न वह मनुष्य के जीवन को यथार्थ में प्रभावित कर सकता है।

योगनिद्रा के अभ्यास में अनेक लोगों ने यह पाया कि धीरे-धीरे उनके जीवन का स्तर, उनके विवेक एवं भावना का स्तर बदलता गया। यह योग निद्रा तन्त्र शास्त्र की एक क्रिया है। तन्त्र शास्त्रों में यह बतलाया गया है कि योगनिद्रा के द्वारा मनुष्य अपने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है और वहाँ सूक्ष्म शरीर के अनुभव प्राप्त करता है, सूक्ष्म शरीर पर इच्छित प्रभाव छोड़ता जाता है। योगनिद्रा के अभ्यास में जो संकल्प लिया जाता है, वह बीज की तरह है, और मनुष्य का मन ज़मीन। योगनिद्रा का अभ्यास उस बीज को पल्लवित करने के लिए हवा, पानी और धूप है।

पिछले पैंतीस वर्षों में मैंने योगनिद्रा का प्रयोग पशुओं, पागलों, होनहार बच्चों, रोगियों और अपराधियों जैसे अनेक वर्गों पर किया है और इनके परिणाम बड़े उत्साहजनक निकले हैं। यह बात सब लोगों के सामने इसीलिए बोली जा रही है कि

हम लोग अपने जीवन से असंतुष्ट हैं। हम अपने स्वभाव को, व्यवहार को बदलना चाहते हैं। हम अपनी कुण्ठाओं को जीतना चाहते हैं, किन्तु ये जो मनोविकार हमारे अन्दर हैं, हमारे स्वभाव में फैले हुए हैं। उनके साथ हम कितने दिनों, कितने वर्षों और युगों तक लड़ते रहेंगे। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि सारा जीवन केवल व्यक्तिगत संग्राम है, और इसी युद्ध में अनेक प्रतिभाएँ नष्ट हो जाती हैं। अनेक होनहार बच्चों का भविष्य बदल जाता है, क्योंकि जिस तरीके से हम अपने स्वभाव को व्यवस्थित कर रहे हैं, वह वैज्ञानिक तरीका नहीं है।

मनुष्य जबरदस्ती अपने पर दबाव डालकर व्यक्तित्व की गरिमा को लादे जा रहा है, जबकि उसके व्यक्तित्व के पास उस गरिमा को वहन कर सकने की शक्ति नहीं है। कभी-कभी उसके ऊपर व्यक्तित्व की वह गरिमा इतनी भारी हो जाती है कि उसका व्यक्तित्व उसके बोझ से दब जाता है। आज हमारा जीवन द्वन्द्वमुक्त नहीं है। जब तक मनुष्य का जीवन द्वन्द्वमुक्त नहीं होगा, उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।

योग सदा से एक बात कहता आया है कि तुम अपने पर अन्याय मत करो। तुम अपने मन के साथ ज्यादा झगड़ा मत करो, तुम अपने आचार-विचार और स्वभाव के साथ वैर मोल मत लो, बल्कि जिस कर्म का परिणाम तुम्हारा जीवन है, जिन संस्कारों की परिणति व्यवहारों में हो रही है, वे संस्कार कहाँ हैं, पहचानो।

मनुष्य मूल में नहीं जा रहा है, गहराई में नहीं जा रहा है। वह चेतना के उथले स्तर को पकड़े हुए है। अगर उससे कहो कि तुम मन को पकड़ो, तो वह सोचता

है कि विचारों को पकड़ना है। परन्तु विचार मन नहीं है, यह तो मन की एक वृत्ति है। भावना मन नहीं है। वासना, ईर्ष्या, भय, घृणा, जुगुप्सा, ये सब मन नहीं हैं। जैसे आग में से धुआँ निकलता है, परन्तु धुआँ आग नहीं है, उसी प्रकार चेतना की गहराई में संस्कार हैं। उन संस्कारों से जो धुआँ निकलता है, वह वृत्ति के रूप में जीवन के चारों तरफ छाया रहता है। इन वृत्तियों को दबाकर अपने व्यक्तित्व को दस आदमियों के बीच प्रदर्शित कर सकते हो, अपने को अच्छा आदमी कहला सकते हो, परन्तु तुम अच्छे नहीं बन सकते, क्योंकि आज जो द्वन्द्व, जो कुण्ठा तुम्हारे जीवन की गहराई में है, उसे तुमने देखा नहीं और न ही देखना चाहते हो।

जब कहा जाता है कि साधना के समय तुम जप करो, तो मन्त्र जप से चित्त थोड़ा एकाग्र जरूर होता है, पर जैसे ही मन में एक विचार आता है, तुम उसे दबा देते हो। तुम लोगों को अपने विचारों से, अपने विक्षेपों से इतना डर क्यों है? अपनी काम-वासनाओं से इतना भय क्यों है? अपने मन में उठने वाली ईर्ष्याओं से इतना भय क्यों है? जप अवश्य परायी चीज है, पर विचार तो तुम्हारे अन्दर के हैं। अच्छा हुआ कि वे निकल रहे हैं, मगर अफसोस इस बात का है कि आज तक हम लोग उनको निकलने नहीं देना चाहते।

शरीर के अन्दर जब मल-मूत्र विकार रहता है और उसका निष्कासन प्राकृतिक द्वार से नहीं होता, तब वायु पैदा होती है, डकार, पित्त पैदा होता है, जिसे तुम दवाई से रोक देते हो। तब फोड़ा-फुंसी होता है। जब तुम उसको भी दवाई से रोक देते हो, तो ज्वर पैदा होता है। अगर उसको भी तुम दवाई से रोक दोगे तो पता नहीं क्या होगा?

शरीर का विकार निकलना चाहिए। इसी तरह मन का विकार भी निकलना चाहिए। शरीर का विकार मल-मूत्र के रूप में और मन का विकार विचारों के रूप में प्राकृतिक ढंग से निकलता है। पर जब तुम अपने मन में उठने वाले विचारों और अपनी वृत्तियों को प्रकृति के द्वार से नहीं निकलने देते तब वह क्रिया में परिणत होकर व्यवहार के रूप में निकलता है। विचारों को दबाने से स्वभाव नहीं बदलता, केवल हमारा दिखने वाला व्यवहार बदल जाता है।

मनुष्य को अन्दर से अच्छा होना चाहिए, केवल बाहर से नहीं। यह जो अन्दर की गहराई है, इसे कोई नाप नहीं सकता। इस सम्बन्ध में मनोविज्ञान हार गया। शरीर विज्ञान तो उसका स्पर्श भी नहीं करता। केवल एक विज्ञान ने मन की तहों में जाकर, चेतना की गहराई में जाकर पता लगाया है, और यह विज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का मनोचिकित्सक बनाता है। तुम अपने मानसिक डॉक्टर हो, तुम मन के अन्दर जाना सीखो।

उसके लिए साधना शुरू होती है जप से। जप धार्मिक साधना नहीं, यह तो जीवन साधना है। तुम ईश्वर को मानो या न मानो, पर तुम्हारा मन तो सत्य है।

नास्तिक और आस्तिक, दोनों का मन होता है। जो विडम्बना आस्तिक की होती है, वही नास्तिक की भी होती है। ईर्ष्या, द्वेष, अभिनिवेश, मृत्यु इत्यादि जो चीजें हैं, वे जितनी सत्य आस्तिक के लिए हैं, उतनी ही नास्तिक के लिए भी। मनुष्य एक है, उसकी विडम्बनायें, वृत्तियाँ, द्वन्द्व एक हैं। इसलिए साधना भी एक है, मन्त्र।

मन्त्र जपने का मतलब केवल भगवान का नाम लेना, यह आस्तिक का भाव है। किन्तु एक-एक मन्त्र, एक-एक अक्षर और एक-एक वर्ण में वह उत्तेजनात्मक शक्ति होती है, जो मनुष्य के अन्दर के कोषों को तोड़कर बाहर निकालती है। तुम्हारा मन्त्र जितना शक्तिशाली होगा, उतनी तेजी से तुम्हारे मन में विचार आयेंगे। जिस साधक को साधनाकाल में जितने ज्यादा विचार आते हैं, वह साधक उतनी ही अच्छी तरह से चित्तशुद्धि के मार्ग में जा रहा है, ऐसा मानना चाहिए।

हमारे अनेक साधक हैं जिन्हें समझाते-समझाते हम थक गये। वे कहते हैं कि जप के समय बहुत विचार आते हैं, उन्हें बन्द होना चाहिए। लेकिन हम बोलते हैं, बन्द नहीं होना चाहिए। मन्त्र का एक उद्देश्य चित्तशुद्धि है। ध्यान से सुनेंगे, ऊँची बात नहीं बोली जा रही है, काम की बात कही जा रही है। जप चित्त की एकाग्रता के लिए नहीं है। जो लोग जप को चित्त-एकाग्रता का आधार मानते हैं, वे योग को नहीं समझते। जब तक चित्त शुद्ध नहीं होगा तब तक चित्त की एकाग्रता एक नाटक, एक अवास्तविकता है। यह कुछ दिन रहेगी और धीरे-धीरे तुम्हें छोड़कर चली जाएगी। समाधि स्थिर नहीं हो सकती, ध्यान स्थिर नहीं हो सकता जब तक चित्त की शुद्धि न हो।

चित्त की शुद्धि है क्या? जैसे पेट साफ हो जाने से या शंख प्रक्षालन करने से देह से मल साफ हो जाता है, उसी तरह हमें अपने सूक्ष्म शरीर का भी शंख प्रक्षालन करना पड़ता है। शंख प्रक्षालन हठयोग में पेट को साफ करने के लिए एक क्रिया है, जिसमें नमक का पानी पिलाकर मुख द्वार से मल द्वार तक आँत को साफ किया जाता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक मार्ग में चित्त-शुद्धि की साधना गुरु से मन्त्र लेते समय शुरू होती है। मन्त्र समाधि का आधार है, परन्तु समाधि का मुख्य हेतु नहीं है। यह पहली साधना है। जितना शक्तिशाली तुम्हारा मन्त्र होगा, उतनी तीव्रता से विक्षेप मन में आयेंगे।

मन के दो भाग होते हैं। मैं अभी सांख्य की बात नहीं बोल रहा, आप लोगों को समझाने के लिए बोल रहा हूँ। एक वह मन जो ऐच्छिक है, और दूसरा मन अनैच्छिक है। स्वप्न में जो मन है, वह अपनी इच्छा से जाता है, मेरी इच्छा से नहीं। अभी मैं यहाँ बैठा हूँ, कुछ सोचूँगा या वहाँ जाकर गाड़ी में बैठूँगा, फिर यहाँ आऊँगा, वहाँ जाऊँगा—इस तरह की क्रियाओं में जो मन कार्य कर रहा है, वह ऐच्छिक है। यह सम्पूर्ण मन का एक छोटा-सा भाग है। योजना बनाने वाला मन, उड़ान भरने वाला मन या छोटे-मोटे निर्णय लेने वाला मन, ऐसा समझो कि

यह बड़े मन का एक छोटा-सा भाग है। यह मन संसार में लगा होता है, दुकान में रहता है, ऑफिस में रहता है, या किसी और काम में व्यस्त रहता है। उस समय भी अनैच्छिक मन, जो अपनी इच्छा से सदैव चलने वाला मन है, जो संस्कारों की मोटर में लदकर चलता है, जो कर्मों के प्रतिफल स्वरूप चलता है, वह तुम्हारी इच्छा से नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से चलता रहता है। जब हम मन्त्र जप के लिए बैठते हैं तब अनैच्छिक मन दिखलायी पड़ता है। इस समय उसकी प्रतीति हमें नहीं हो रही है क्योंकि हम अभी इन्द्रियमुग्ध हैं। जब हम अपना मुख इन्द्रियों से मोड़ लेते हैं, उस समय हमें उस मन की प्रतीति होती है। उसी मन को पकड़ना योग है।

उस मन को योगनिद्रा, राजयोग, हठयोग और कर्मयोग में पकड़ते हैं। योग में जितने सिद्धान्त और युक्तियाँ हैं, उन सबका एक ही प्रयोजन है—इस मन को पकड़ना। जब हमें मन्त्र की साधना मिल जाती है, तब हमें मन्त्र जप करना चाहिए और जपते समय यदि मन भागे तो भागने देना चाहिए। एक बार एक आदमी ने हमसे कहा कि मैंने मन्त्र जप इसलिए छोड़ दिया कि खाली माला हिलती थी, मन नहीं हिलता था। हमने सोचा, अन्धेर हो गया। क्या कभी मनुष्य अपने विचारों को अन्दर दबा सकता है? यदि कोई आज तक ऊपर उठा है, तो मन के सब विकारों को निकालकर ही वह उठ सका।

योग कहता है कि जीवन के विक्षेपों और अराजक तत्त्वों को तुम मन्त्र के द्वारा निकालो। कभी-कभी ये विक्षेप एकदम तीव्र बन जाते हैं। उस समय हमें अपने मन में ऐसी धारणा करनी पड़ती है कि मैं इन विचारों का द्रष्टा मात्र हूँ। ये विचार कई तरह के हो सकते हैं, जैसे ईर्ष्या, भय, मृत्यु, कामवासना, हत्या या अन्य बुरे विचार। इनको शान्त चित्त से एक-एक कर देखना होता है, और इनको पकड़कर नीचे उतारकर इनके मूल में जाना होता है। जो योगाभ्यास करते हैं, वे इस तथ्य को समझ जायेंगे। हर बार पूर्व का विचार सामने आता जाता है। इस तरह आप उस स्थान तक पहुँच जाते हैं, जहाँ से उस विचार का उद्‌भव होता है। योग शास्त्रों में कुछ साधनाएँ विचारों को निकालने के लिए की जाती हैं, जिसे योग शास्त्र में चित्त शुद्धि कहते हैं।

कर्मयोग, तप, मन्त्र-जप आदि से चित्त शुद्ध होता है। जब पेट साफ हो

जाता है, तो बहुत हलका लगता है, इसी प्रकार जब चित्त शुद्ध हो जाता है तो मन हलका लगता है। बादलों के बिना आसमान जैसे निर्मल होता है, उसी प्रकार हमारा मन विक्षेप रहित होकर निर्मल हो जाता है। इस निर्मलता को प्राप्त करने के उपरान्त आँख बन्द करने पर चिदाकाश में स्वेच्छा से जो देखना चाहोगे, वह दिखेगा, चाहे वह ज्योति हो या शिवलिंग, दुर्गा या गुरु। यदि इस समय नाद सुनने की कोशिश करोगे तो तुम्हें कई मधुर ध्वनियाँ सुनाई देंगी। जिस प्रकार दर्पण साफ होने पर अपना चेहरा बिना प्रयास के दिखने लगता है, उसी प्रकार चित्त शुद्ध होने पर दिव्य स्वरूप प्रकट होने लगता है।

बुरा नहीं मानना, पर आप लोगों की साधना बेतरतीब ढंग से चल रही है। जिसके मन में जो आया सो कर रहा है। साधना में सबसे पहली चीज है चित्त शुद्धि और इस चित्त शुद्धि के उपाय हैं निष्काम कर्मयोग, तप और दीक्षा। मन्त्र का बार-बार जप करो। सबेरे करो, रात को करो और इसके बाद एक साधना करो, जिसे कहते हैं नौमुखी मुद्रा। सिद्धासन लगाओ। एक एड़ी को शुक्र नाड़ी पर, दूसरी को वज्र नाड़ी पर रखने को कहते हैं सिद्धासन। सिद्धासन लगाकर दोनों अंगूठों से दोनों कानों को बन्द कर लो, तर्जनी अंगुलियों से दोनों आँखों को बन्द कर लो, दोनों मध्यमाओं से नासिका छिद्रों को बन्द कर लो और अनामिका तथा कनिष्ठिका से होठों को बन्द कर लो। सात दरवाजे बन्द हो गये। उसके बाद अश्विनी मुद्रा करके मूल बंध लगाओ। तो नौ दरवाजे आपके बन्द हैं।

नौमुखी मुद्रा में नौ दरवाजे बंद कर श्वास अन्दर लेना, रोकना और उसके बाद जालंधर बंध लगाना। पाँच-दस सेकेण्ड श्वास रोकना और फिर इस मुद्रा को छोड़ देना। इसे जप के पहले छ: बार दुहराओ, क्या होगा? मन स्तंभन। आसन जो करते हो, ठीक है, घूमना-फिरना जो करते हो ठीक है, व्यायाम जो करते हो, वह भी ठीक है, तुम्हारी इच्छा है, परन्तु जप करने से पहले नौमुखी मुद्रा कर लेना।

मन को एकाग्र करने की कोशिश मत करो, मैं फिर बोल रहा हूँ। यह आज का नहीं, तैंतीस साल का अनुभवसिद्ध रहस्य है। अपने मन को अभी एकाग्र करने का प्रयत्न छोड़ दो, केवल मन्त्र जपो, और मन्त्र जपते समय अपने चित्त की वृत्तियों का अवलोकन करो, कहाँ जा रही हैं, कहाँ से आ रही हैं। यह छ: महीने या साल भर चलेगा। अधिक-से-अधिक दो साल तक चल सकता है। उन दिनों जब तुम्हें परेशानियों और विपत्तियों ने घेर रखा हो, जब विपरीत परिस्थितियाँ तुम्हारे जीवन में आ गयी हों, उस समय उनकी भी चिन्ता तुम्हारे मन को पराजित नहीं कर सकती। यही रहस्य है।

अब जप-योग करने वालों की साधना सुनिये। रात को आप जब सोने जाते हो, उस समय भी अपना जप करना चाहिए। केवल पूजा के समय और पूजा के आसन में ही जप करने से काम नहीं चलता, बिस्तर में भी कर सकते हो और

करना चाहिए। अपने बिस्तर के सामने की दीवार पर एक छोटा-सा काला बिन्दु लगाओ और उस काले बिन्दु को दस सेकण्ड अपलक देखो। त्राटक की बात कह रहा हूँ। फिर आँखें बन्द करो, भ्रूमध्य में एक बिन्दु प्रकट होता है, उस बिन्दु को देखो। फिर आँखें खोलो और टकटकी लगाकर देखो। चार-पाँच मिनट यह अभ्यास करो। उसके बाद जिस तरह से हम लोग कुर्सी में बैठ जाते हैं, उसी तरह से या जैसे सुविधा हो वैसे बैठो। दो अंगुलियों को कान में डाल दो, मन को अन्दर खींचो। अब अन्दर की आवाज सुनो। चिड़िया की चहचहाहट या मेघ का स्वर, कुछ भी सुनायी दे सकता है। कल्पना से ही होगा, ऐसी बात नहीं। मुरली की ध्वनि भी सुनायी दे सकती है और संगीत का आलाप भी। अनुसंधान करो, मात्र अनुसंधान। नाद को अपने अन्दर खोजो, आवाज पकड़ में जरूर आयेगी। जो आवाज आ रही हो उसे पकड़ो, सुनो कि यह आवाज किसकी है। यह क्रिया पाँच-छ: बार करो, उसके बाद फिर माला लो और जप करते जाओ। मुँह से करो या मन से या श्वास से करो, यह तुम्हारी इच्छा पर है, अथवा तुम्हारे गुरु ने जिस प्रकार बतलाया है।

मैंने जो कुछ बतलाया उसका केवल एक उद्देश्य है—अन्तर्दृष्टि को खोलना। इसके लिए शास्त्रों में जो मार्ग बतलाया गया है, उसमें पहले चित्त शुद्धि, फिर विक्षेपों का निवारण और अंत में निवृत्ति—ये तीन चीजें करनी है। इसमें सबसे पहले चित्त की शुद्धि आती है। हमारी जितनी साधनाएँ हैं, वे चित्त शुद्धि का आधार लेकर होती हैं।

मैं मन में उठने वाले प्रत्येक विचार को मार्ग मानता हूँ। जो भी विचार तुम्हारे सूक्ष्म शरीर से आ रहे हैं, उन विचारों को अगर तुम पकड़ते जाओगे तो तुम अपने सूक्ष्म शरीर को पकड़ सकते हो। बड़े आराम से तुम एक दिन वहाँ पर जा सकते हो, जहाँ विचारों का उद्भव हुआ है, जहाँ जन्म-जन्मांतरों के कर्मों की थैली भरी पड़ी है। जब ग्रन्थि का भेदन हो जाता है, संशयों का नाश हो जाता है, कर्मों का क्षय हो जाता है, उस समय मनुष्य को वह स्थान दिखलायी देता है, जो समस्त कर्मों, संस्कारों, अनुभवों और ज्ञान का मूल है।

—21 मई 1979, भारतीय नृत्य कला मंदिर, पटना

कलियुग का धर्म–परोपकार

इन्सान को दूसरों के बारे में भी सोचना चाहिए। अगर तुम ऐसे लोगों के बारे में सोचते हो, जो तुम्हारे रिश्तेदार नहीं हैं, न खून का रिश्ता है, न जात का और न ही प्रेम का, तो समझो कि आध्यात्मिक मार्ग में तुम्हारा एक कदम बढ़ा है। अपने बीवी-बच्चों, रिश्तेदारों, दोस्त-मित्रों के बारे में तो सभी सोचते हैं। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है, प्रशिक्षण देने की भी जरूरत नहीं पड़ती है। मगर दूसरों के बारे में सोचना मुश्किल है। और असली चीज क्या है, उसको ध्यान से सुनो। दुनिया में हर एक प्राणी को प्रेम चाहिए, कुत्ते, गाय, भेड़, तोते, सबको। नहीं चाहिए क्या? हर एक को प्रेम चाहिए। कुत्ता प्रेम माँगता है, उसके सिर पर हाथ फेरो तो उसे बहुत अच्छा लगता है।

यह प्रेम बहुत लोगों को नहीं मिल रहा है, क्योंकि घर के लोग उनको निकाल देते हैं या घर के लोग मर गये होते हैं और कोई खाना देने तक के लिए तैयार नहीं होता है। भले ही तुम शिवजी को पाँच सौ लीटर दूध चढ़ा दो, मगर किसी जरूरतमंद को एक लीटर भी नहीं दोगे। पचास-सौ रुपये में पाठा काटते हो, लेकिन यह नहीं सोचते कि इस पैसे से दस विधवाओं को खाना खिलायेंगे तो मेरा बेटा ठीक हो जाएगा। ऐसा नहीं कि हम देवी-देवताओं की निन्दा कर रहे हैं, हम तो सनातन धर्म वाले हैं, हम भी उनको मानते हैं। लेकिन लोगों का अंधविश्वासों में इतना विश्वास है कि कोई यह विश्वास नहीं रखता कि चार गरीबों को खिलाऊँगा तो मेरा बेटा ठीक होगा। यही मानते हैं कि पाठा काटेंगे, तब ही चंगा होगा।

मदर टेरेसा, जिसकी अभी हाल में मृत्यु हुई है, वह हिन्दुस्तान की रहने वाली नहीं थी। वह अल्बानिया की रहने वाली थी। वह उत्तरी आयरलैण्ड चली गयी, वहाँ नन बन गयी, माने संन्यासी बन गयी। उसके बाद वह हिन्दुस्तान आयी। देश में जहाँ दंगा चल रहा था, वह वहाँ गयी। मैं भी वहीं था, उससे मिला था। फिर वह कलकत्ता आ गयी। उसका एक ही काम था। रास्ते में जो कोई बच्चा लावारिस मिलता था, उसे उठा कर लाना, उसे झाड़ना-पोंछना, नहलाना, ड्रेसिंग करना, खाना खिलाना। लोग मजाक उड़ाते थे कि वह ईसाई है, ईसाई धर्म का प्रचार कर रही है। किन्तु उसके इस काम को देखकर चौदह-पन्द्रह साल की लड़कियाँ उसके साथ जुड़ने लगीं। जुड़ने का मतलब संन्यास नहीं, बस रोज वहाँ जाने लगीं। हमारी जान-पहचान के बड़े-बड़े लोग थे, दस-दस ड्राइवर और बीस-बीस नौकर वाले, बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ चलाते थे, सब कार लेकर वहीं चले जाते थे, एक-दो हजार कम्बल दे देते थे।

वे सबको रखती थीं। उनके साथ दुर्व्यवहार भी हुआ। लेकिन उनका एक ही कहना था—जिसका पति है, वह उसको प्यार दे देता है, जिसकी पत्नी है, वह उसको प्यार दे देती है, ज्यादा नहीं तो थोड़ा ही सही। जिसकी माँ है, उसे माँ का प्यार मिल जाता है, जिसके बेटा-बेटी हैं, उसे उनका प्यार मिल जाता है, भाई-बहन को एक-दूसरे का प्यार मिल जाता है। मतलब अधिकतर लोगों को किसी-न-किसी रूप में, किसी तरह प्यार मिलता ही है। उन लोगों को मेरी जरूरत नहीं। किन्तु कुछ लोग ऐसे अभागे हैं, जिनको किसी का प्यार नहीं मिलता। मतलब उनको कोई पूछने वाला भी नहीं है कि तुम जिन्दा हो या मर रहे हो, बल्कि उनकी ओर देखकर थूक देते हैं।

साईं सब संसार में मतलब का व्यवहार।
जब तक पैसा पास में तब तक ताको यार॥

यही दुनिया का रिवाज है। तो ऐसे अभागे व्यक्ति को जो प्रेम दे, वह परमेश्वर का ही स्वरूप होता है। भगवान श्री राम जब अयोध्या छोड़कर जा रहे थे और तमसा नदी पार करके शृंगबेरपुर पहुँचे तब वहाँ रास्ते में केवल निषादराज उनकी नजरों में उतरा। शबरी के अलावा उन्हें कोई सच्चा भक्त ही नहीं मिला।

भगवान का यह कहना है कि जिस तरह से हमने तुमको प्रेम दिया, तुम भी दूसरों को प्रेम दो। हमसे एक बार किसी ने कहा, 'स्वामीजी, आपने फलाने आदमी को कुछ दिया और उसने उस चीज को बाजार में बेच दिया।' हमने फट् से जवाब दिया, 'देखो, उसने जो बेचा, मुफ्त में तो नहीं गया न? पैसा मिला न?' उसने कहा, 'हाँ।' हमने कहा, 'पैसा मिला तो कुछ फायदा तो हुआ न?'

मान लो, हमने तुमको एक बैल दिया और तुमने जाकर बाजार में बेच दिया। हमने बैल खरीदा तीन-चार हजार में, तुमने उसे सौ रुपये में बेच दिया। पर तुमको कुछ तो पैसा मिला न? बस काम हो गया। उसी से मतलब है, तुमको कुछ तो फायदा हुआ। अब हम यह नहीं सोचेंगे कि हमने तुम्हारा भला किया और तुमने हमसे धोखा किया। नहीं, न साधु ऐसा सोचता है और न भगवान ऐसा सोचते हैं।

भगवान ने तुम्हें भी बहुत-सी चीजें दी हैं। क्या तुमने उनका दुरुपयोग नहीं किया है? तुमने भगवान से बेईमानी नहीं की है क्या? भगवान ने तुम्हें बहुत-सी चीजें दान में दी हैं, अच्छी स्त्री, अच्छे बच्चे, अच्छा घर, अच्छा नौकर, लेकिन तुमने तो सबका गलत इस्तेमाल किया है। मगर भगवान बुरा नहीं मानते हैं। कहते हैं, चलो बेटा, तुम्हारा कुछ तो भला हुआ। बस हमारा भी यही कहना है। हमारा, तुम्हारा, हम सब का काम है, ऐसे व्यक्ति को खोजना, जो बेसहारा हो। जिसका कोई सहारा नहीं है, भगवान ही उसका सहारा हो सकता है। भगवान तुमसे जो प्रेम करते हैं, वह बिना मतलब के, बिना किसी स्वार्थ के करते हैं, क्योंकि वे प्रेम-स्वरूप हैं। जो प्रेम-स्वरूप है, प्रेम करना तो उसकी कमजोरी है, उसका स्वभाव है। भगवान प्रेम-स्वरूप हैं, वे किसी को दण्ड नहीं देते हैं। मनुष्य का कर्म ही उसे अपने आप दण्ड देता है। अगर जहर खाओगे, तो मर जाओगे, दूध पिओगे तो मोटे हो जाओगे, नीम खाओगे तो कड़वा लगेगा, रसगुल्ला खाओगे तो मीठा लगेगा, इसमें भगवान को कहाँ बीच में ले आते हो?

मदर टेरेसा को इतना सम्मान मिला, इतने लोग मानते हैं। कलकत्ते में हिन्दू, मुसलमान, अन्धे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, बदमाश, चोर, सब फूल लेकर जा रहे हैं, वेश्याएँ जा रही हैं, वहाँ फूल चढ़ाने के लिए। कैथोलिक परम्परा के पोप भी अपना प्रतिनिधि भेज रहे हैं। आज तक इतिहास में ऐसा नहीं हुआ है कि वे किसी कैथोलिक नन के मरने पर अपना प्रतिनिधि भेजें। परन्तु मदर टेरेसा के लिए हुआ और कैथोलिक मत के प्रमुख की तरह उसकी अन्त्येष्टि होगी। जो भी कर्मकाण्ड होगा, वह पोप का प्रतिनिधि करेगा। यह इतिहास का पहला उदाहरण है। यह सम्मान है। और सब से बड़ी चीज है कि आज तक महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू के अलावा किसी को भी तोपगाड़ी में अन्त्येष्टि नहीं मिली है। मदर टेरेसा की भी अन्त्येष्टि का पूरा इंतजाम सेना ने अपने हाथ में ले लिया है।

सम्मान की बात छोड़ो, कहने का मतलब यह है कि उसकी जो साधना थी, वह यही थी कि परमेश्वर प्रेम-स्वरूप है और जब भी किसी मरते हुए आदमी को, किसी रोगी को, किसी अनाथ को या किसी अभागे को गले लगाते हैं, तब यही परमात्मा की पूजा है। परमात्मा की पूजा के बहुत रूप होते हैं। मन्दिर में जाकर बेल-पत्ता और तुलसी चढ़ाना भी पूजा है, घण्टी और शंख बजाना भी पूजा है, तीर्थ और व्रत करना भी पूजा है। मगर इस कलियुग में भगवान की सर्वश्रेष्ठ पूजा है दूसरों की भलाई करना। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कहा भी गया है, कलियुग में दो ही चीजें महत्त्वपूर्ण हैं जो मनुष्य को मुक्त कर देती हैं। एक भगवान का नाम-स्मरण और दूसरा परोपकार। यही कलियुग के धर्म हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापर के धर्म अलग-अलग थे। सतयुग में यज्ञ था, त्रेता में तप था, द्वापर में

योग था। और कलियुग में नाम है। पूरे रामचरितमानस का आधार है 'राम नाम', और कुछ नहीं।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥

बच्चों को भगवान का नाम और सात्त्विक श्रद्धा सिखाओ। पाठा वाली श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा नहीं है। गृहस्थ हूँ, भगवान का नाम लेता हूँ, अपने बीबी-बच्चों को पालना पड़ता है, पर थोड़ा समय दूसरों के लिए भी काम कर लेता हूँ—यह सात्त्विक श्रद्धा है।

अगले साल से हम यही करने वाले हैं। जो स्त्रियाँ बेसहारा हैं, बेटा-बहू देखते नहीं, बुढ़ापे में किसी तरह सड़क पर भीख मांगती हैं या किसी के यहाँ बर्तन धोती हैं, उन्हें हम यहीं आत्मसात् कर लेंगे और सुबह आठ बजे बुलायेंगे। तीन रुपये प्रति घण्टा के हिसाब से, जितने घण्टे का काम करें, पैसा तत्काल दे देंगे। काम उनको कुछ नहीं करना है। अनपढ़ हों तो राम नाम लेना है, *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'*, बस इतना ही करना है। और थोड़ी पढ़ी-लिखी हों तो उनको रामचरितमानस पढ़ना होगा। बूढ़ी औरतें तो बहुत कम मिलेंगी ऐसी, लेकिन अगर मैट्रिक पास हो तो उसको बोलेंगे 'श्री राम, श्री राम' लिखते जाओ। वह नोटबुक में लिखेगी, ऐसी बहुत सारी नोटबुक हो जायेंगी। जब नई बिल्डिंग बनेगी तो नींव में डाल देंगे उनको। भगवान के नाम पर उसकी नींव होगी!

आप लोगों के हाथ-पैर तो मजबूत हैं, पर समाज में बहुत-से ऐसे लोग भी हैं जो बहुत ही लाचार हैं। कोई भीख मांगते हैं, कोई पचास-सौ रुपये की नौकरी करते हैं, किसी घर के बरामदे में सो जाते हैं। अगले साल हमने सौ लोगों का बजट रखा है। उनको सरकार के नियम मुताबिक मजदूरी देंगे, तीस-चालीस रुपया जो भी है। अगर सरकार ज्यादा कहेगी, तो ज्यादा देंगे, क्या रखा है। जब तक पैसा है, देंगे।

दुनिया में अच्छाई का आदर अभी भी है। मदद करने वाले से राष्ट्रपति, धर्मपति, गरीब, अमीर, सब प्रभावित हैं। हम हिन्दू हैं, वह ईसाई है, ऐसा नहीं है। हमारा धर्म संकीर्ण नहीं है। सीधी-सी बात है, जो आदमी अच्छा है वह इन्सान है, जो बुरा है, वह हैवान है, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म में जन्मे।

हम लोग पारिवारिक दायित्व की बात तो करते हैं, मगर सामाजिक दायित्व की बात नहीं करते। उसको ऋण कहते हैं। हमारे पूर्वजों ने कहा है कि हर व्यक्ति के ऊपर पाँच ऋण रहते हैं—देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, भूत ऋण और मनुष्य ऋण। देव ऋण पूजा, यज्ञ आदि से चुकता है। वशिष्ठ, व्यास, विश्वामित्र आदि जैसे हमारे पूर्वज ऋषियों ने कईं ग्रन्थ लिखे। उन्हें आज कोई नहीं पढ़ता, लेकिन हम पढ़ते हैं। ऋषि ऋण अध्ययन से चुकता है, हमने चुका दिया। इसलिए खूब पढ़ो,

खाली समय में पढ़ो, दिन-रात पढ़ो। हमारे यहाँ चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण हैं, अन्य बहुत से ग्रन्थ हैं। हमारे हिन्दुस्तान का साहित्य इतना विशाल है कि अंग्रेजी के बाद इसी का नम्बर आता है। अंग्रेजी साहित्य बहुत विशाल है, उस जैसा विशाल साहित्य तो दुनिया भर के किसी देश में नहीं है। उसके बाद संस्कृत का स्थान आता है। संस्कृत में हर विषय पर ग्रन्थ हैं, धर्म शास्त्र से लेकर काम शास्त्र तक। मगर कौन पढ़ता है? हाँ, हम लोग पढ़ते थे, लेकिन हम लोगों का अब जमाना बीत चुका।

मनुष्य ऋण समाज के प्रति ऋण है। तुमने समाज का ऋण तो चुकाया ही नहीं। लेकिन हम चुकाते हैं। यह काम रिखिया में ही नहीं, सब जगह जरूरी है। सब जगह ऐसे विचार वाले लोग होने चाहिए। पचास साल के बाद सबको सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए। हमारे धर्म में लिखा है, वानप्रस्थ आश्रम। और पचहत्तर वर्ष के बाद तो बाल-बच्चों को छोड़कर, सबको छोड़कर, कहीं कुटिया बना लेनी चाहिए और अपने बचाए हुए पैसे से गरीबों के बीच काम करना चाहिए। ऐसा मत सोचो कि मेरे पास ज्यादा पैसा नहीं है, मैं दूसरों की मदद कैसे करूँगा। जैसा मैंने पहले कहा, दुनिया में अच्छे लोगों की कमी नहीं है। तुम जानते हो, द्विरागमन के समय हम गाँव की वधुओं को कपड़े, गहने वगैरह देते हैं। सारी व्यवस्था स्वामी सत्संगी करती है। हाल में मैंने एक पेटी देखी, तो कहा, 'तीस हजार से कम का सामान नहीं होगा!' तो उसने पूछा, 'क्या करूँ?' मैंने कहा, 'दो, अगर तुम्हारी लड़की होती तो नहीं देते क्या?' मेरे कहने का मतलब है कि आखिर उस पेटी को भी तो किसी ने भेजा है, मैंने तो नहीं कमाया है। एक व्यक्ति ने कलकत्ता से डेढ़ सौ पेटियाँ तैयार करके भेजीं—साड़ी, चूड़ी, सैन्डिल, तिलक, सिंदूर, घड़ी इत्यादि। यहाँ तक कि सेनेटरी टॉवेल तक भेज दिया उन लोगों ने, जो लड़की और आगे की सन्तान के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है।

लोगों को यह अच्छा लगता है कि किसी भी कन्या को द्विरागमन के समय, जब अंतिम रूप से बहू बनाकर भेजा जाए, तब उसे अच्छी चीज दी जाए। यह सब सत्कार्य है। जब कोई आदमी दूसरों के लिए सोचता है तब दूसरे भी उसके लिए सोचते हैं। ऐसे ही आदमी को साधु-महात्मा कहा जाता है।

—12 सितम्बर 1997, रिखियापीठ

सत्यम् वाणी

ग्रामीण सेवा

हमने अभी यहाँ की लड़कियों को पढ़ाना शुरू किया है, पर इन लोगों को यह भी समझ में नहीं आता कि पढ़कर करेंगे क्या। यहाँ जो पढ़ाई होती है वह इनके काम आने वाली नहीं, क्योंकि ये तो किसान और मजदूर परिवारों से हैं। बुनियादी साक्षरता यानि पढ़ना, लिखना और गणित, यहाँ तक ठीक है, हम मानते हैं। काला अक्षर भैंस बराबर नहीं होना चाहिए। पर उसके आगे इन्हें जो पढ़ाना चाहिए वह आप लोग पढ़ा नहीं सकेंगे, क्योंकि आप खुद नहीं जानते हैं। गाय का कैसे पालन होना चाहिए, कैसे दवाई देनी चाहिए, कौन-सा टीका लगाना चाहिये, कैसे पता चलेगा कि गाय गर्म हुई कि नहीं, गाय की बीमारी का पता, उसके दूध का पता, कौन-सा चारा किस महीने में देना, उसके गोबर का क्या उपयोग है, गोबर से गैस कैसे बनाई जाती है, उसके लिये सरकार कहाँ से पैसा देती है, किस मौसम में कौन-सी सब्जी लगानी चाहिए, कितना खाद-पानी देना चाहिए, यह सब तो नहीं पढ़ाते स्कूल में।

साक्षरता के आगे आजकल जो शिक्षा दी जाती है वह गाँव के लिये अनुपयुक्त है। औरंगजेब कब पैदा हुआ, जहाँगीर के बेटे का क्या नाम था, उसने कितने महल बनाए, तानसेन का गुरु कौन था, रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार कब मिला, यह इन लोगों के काम की चीज नहीं है। गाँव की जिन्दगी जीवित रहने तक सीमित है। इनको न टेलिफोन से मतलब है, न गाड़ी से। इनको केवल घर कैसे बनाना, गाय कैसे पालना, साग-भाजी कैसे पैदा करना, घड़े कैसे बनाना, इन सब चीजों से मतलब है। यह भारत के अस्सी प्रतिशत लोगों की आवश्यकता है, पर यह शिक्षा भारत में नहीं दी जाती है। भारत में जिस शिक्षा पर शिक्षा विभाग अरबों रुपये खर्च कर रहा है, वह ज्यादा-से-ज्यादा बीस प्रतिशत की आवश्यकता है, बस। यह बीस प्रतिशत वर्ग अल्पसंख्यक है। बाहुल्य तो उस अस्सी प्रतिशत आबादी का है जो गाँवों, जंगलों और पहाड़ों में रहती है। नीम पेड़ से कैसे तेल निकालना, गोंद कैसे बनाना, रेज़िन कैसे तैयार करना, उसको चपड़ा-लाख में कैसे बदलना, उसे बाजार में अच्छे मूल्य पर विक्रय कैसे करना, यह व्यवसायी शिक्षा गाँव के काम की है, शहर के नहीं। जंगलों में जो संथाली लोग रहते हैं वे वन मण्डलाधिकारियों और संरक्षकों से भी ज्यादा जानते हैं। यहाँ संथाली औरतें कमर में एक जड़ी लगा लेती हैं, बच्चा नहीं होता। प्राकृतिक परिवार नियोजन हो जाता है।

ग्रामीण सेवा करने का मन तो बहुत लोगों का है, मगर सेवा के गुण हम लोगों में नहीं हैं। आज़ादी की लड़ाई के समय नेता तो हिन्दुस्तान में बहुत थे,

बहुत भाषण दे सकते थे, पर सिर्फ गाँधीजी का इतना प्रभाव क्यों पड़ा? इसलिए कि गाँधीजी चरखा चलाते थे। गाँव के लोग चरखे की बात समझते हैं, क्योंकि बुनकरी हिन्दुस्तान की बहुत प्राचीन ग्रामीण कला है। गाँधीजी ने गोबर-गैस के लिये भी गाँववालों को बहुत ज्यादा उत्साहित किया। गाँव-गाँव में खादीग्राम के लोग गोबर-गैस प्लांट लगाते थे। गाँधीजी ने लोगों को वह शिक्षा दी जिसकी जरूरत हिन्दुस्तान की अस्सी प्रतिशत जनता को थी। इसलिये गाँधीजी की बातों को सब लोगों ने स्वीकार किया।

आज हमारे देश में जो शिक्षा दी जा रही है, उसका बिल्कुल तुक नहीं है। बी.एस सी. और एम.एस सी. डिग्रीवाले जरूर पैदा हो रहे हैं, मगर बेकारों की संख्या भी बढ़ रही है। ये लोग बैंक में काम करते हैं तो गलतियाँ करते हैं। सचिवालय में काम करते हैं, वहाँ भी गलतियाँ कर देते हैं। न अंग्रेजी लिखनी आती है, न हिन्दी। गाँव की सेवा करने के लिए ऐसे लोगों की जरूरत है जो गाँव की जरूरत पहचानें। हमने जब से गाय रखी, गोबर-गैस के लिये प्रयास कर रहे हैं। गोबर हमारे पास है, हमें उसकी पूरी जानकारी है, मगर गोबर-गैस संयंत्र लगाने के लिए कोई मिस्त्री नहीं मिल रहा है। शायद हमें गिरिडीह से मिस्त्री बुलाना पड़ेगा। कोई कहता है दिल्ली से बुलाओ मिस्त्री। यहाँ के गोबर-गैस संयंत्र के लिए हम दिल्ली से मिस्त्री बुलाएँ, यह भी कोई शिक्षा है?

आजकल के स्कूल-कॉलेजों में जो शिक्षा है वह एक प्रकार से अहंकार है, थोथा अहंकार। हमने भी स्कूल में पढ़ाई की है, मगर वहाँ हमने जितना पढ़ा, ए-बी-सी-डी, क-ख-ग-घ, 1-2-3-4 को छोड़कर आज कोई चीज हमारे काम नहीं आ

रही है। काम आईं वे चीजें जो मैंने गुरुजी के आश्रम में बारह साल सीखीं। पानी न हो तो कैसे लाना, मकान कैसे खड़े करना, दो-तीन सौ लोगों के लिये खाना कैसे बनाना, चावल कैसे साफ करना, कंकड़ और चावल में फर्क क्या है, यह सब हमने सीखा वहाँ। लोगों से कैसे बात करना, लोगों को कैसे पटाना, यह सब सीखा। जीवन में चतुराई, जीवन जीने की क्षमता, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए गाँव में।

जब हम कोलम्बिया गये थे तो वहाँ एक कैथोलिक चर्च में ठहरे थे। वहाँ एक चाक रखा हुआ था, जिसके नीचे चर्च के साधु लोगों ने मोटर लगा दी थी। वे चीनी मिट्टी इकट्ठा करके लाते थे, उसके बर्तन बनाते थे, उन्हें आग में पकाते थे और उन्हें गाँव में बेचते थे। इसी से उनका चर्च चलता था। हम वहाँ बहुत दिन रहे, हमने सीखा कि किस तरह से इस मिट्टी को मिलाते हैं, कौन-सा रसायन डालते हैं, कितनी देर पकाते हैं, कितने तापमान पर रखते हैं, कौन-सी लकड़ी जलाते हैं। कोई लकड़ी धुआँ वाली होती है, कोई ज्वाला वाली। किसी लकड़ी में गर्मी ज्यादा होती है, किसी में कम। कोई लकड़ी गर्मी को बहुत देर तक रखती है जैसे बाँस की लकड़ी। उसमें बहुत गर्मी होती है जो बहुत देर तक रहती है। बाकी लकड़ियाँ गर्म तो होती हैं, पर तुरंत ठण्ढी हो जाती हैं। ये सब चीजें वहाँ सीखीं। फिर उसके बाद हम जापान गये। जापान के जिस गाँव में रहे, वहाँ पर वे लोग चीनी मिट्टी में रंग मिलाकर उसे आँगन में पकाते थे। प्यालों में नीला-पीला रंग देखते हो न, वह सब सीखा। मगर अब हम वह नहीं सिखा सकते क्योंकि हमने वह काम छोड़ दिया है।

हमें पानी का पता लगाना भी मालूम है। मुंगेर में हमने कहा था, यहाँ खोदो, यहाँ मिलेगा पानी। हम परम्परागत पद्धति से पानी का पता नहीं लगाते, हमारा दूसरा तरीका है। कहाँ कौन-सा पेड़ है, चींटियाँ निकलती हैं कि नहीं, दीमक का बांबी है कि नहीं, इन सब से पता चलता है। हमने यहाँ कुआँ खुदवाया है। खोदने वाला बोला, 'बाप रे, यहाँ तो इतना पानी है कि पूरी सिंचाई हो सकती है।' सिंचाई का मतलब बारह-चौदह घण्टे ट्यूबवेल चल सकता है। गाँव के लोगों को पानी का पता लगाने की कला सिखाओ ताकि उन्हें पता लगे कहाँ पानी मिल सकता है, कहाँ नहीं। बांस-बोरिंग सिखाओ। बोरिंग के लिये जी.आई. पाईप की जरूरत नहीं है। बांस को काटकर आपस में मिलाकर केला से बाँधकर डाल दो। मगर यह सब सिखाने वाला होना चाहिए। गाँव के लिये ये सब चीजें जरूरी हैं।

हिन्दुस्तान की हालत इसलिए खराब है कि यहाँ के अस्सी प्रतिशत आदमी आज लाचार हैं। आज ये आदमी अगर जिन्दा हैं तो सरकार के कारण नहीं, सचिवालय के कारण नहीं, सेना की वजह से नहीं। ये जिन्दा हैं केवल अपनी करामात पर। हिन्दुस्तानी आज केवल इसलिए जीवित हैं, क्योंकि उनके पास जीवित रहने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है। मैं यहाँ से लकड़ी के चार टुकड़े फेंकता हूँ, पाँच मिनट

में गायब हो जाते हैं। पत्ते, कपड़े के टुकड़े, सब गायब हो जाते हैं। ये एक-एक चीज का इस्तेमाल करते हैं।

राष्ट्रीय शक्ति का विकास

गाँववालों की सेवा करने के लिए आप जैसे शहरी लोगों के मन में जो तमन्नाएँ हैं, वही काफी नहीं हैं। आप लोगों के पास ज्ञान तो है नहीं। गाँव में पैदा होना, गाँव में रहना और गाँव में मरना, ये तीन चीज़ें जरूरी हैं गाँव की सेवा के लिये। हिन्दुस्तान का नाम गाँव है और गाँव का नाम हिन्दुस्तान। दिल्ली हिन्दुस्तान नहीं है, दिल्ली तो वर्णसंकर जगह है। थोड़ा अंग्रेजी, थोड़ी हिन्दी, थोड़ा चीनी, थोड़ा रूसी। बड़े शहर वालों की कोई संस्कृति नहीं होती। जिस तरह से वृक्ष को बड़ा करने के लिए जड़ों की जरूरत होती है, उसी तरह से किसी भी राष्ट्र, समाज या व्यक्ति के लिये तीन जड़ें होती हैं—चरित्र, आचरण और विचार। तीनों को काट दो तो छोटे का छोटा रहेगा, बोन्साई रहेगा। आप सब बोन्साई हैं। भारत एक बोन्साई संस्कृति है, बढ़ ही नहीं रही है।

जरा चीन को देखो। चीन ने इतनी बड़ी छलांग मारी है कि चीन के राष्ट्रपति ने जब अमेरिका छोड़ते समय कहा कि हमारे देश के अन्दरूनी मामले में तुम हस्तक्षेप नहीं करना, तो अमेरिका का राष्ट्रपति कोई जवाब नहीं दे सका। चीनियों ने साफ कह दिया, तियानान्मेन स्क्वेयर की बात नहीं करना, और हमें नवीनतम परमाणु तकनीक दो। अमेरिका ने दे दिया। हिन्दुस्तान कर सकता है ऐसी बात? जिस राष्ट्र के पास शक्ति है, वही दूसरे राष्ट्र पर शर्त रखेगा। राष्ट्र किसी भौगोलिक क्षेत्र का नाम नहीं, बल्कि व्यक्तियों के समूह का नाम है। एक-एक आदमी से मिलकर राष्ट्र बनता है। तमाम शिकायतों के बावजूद अमेरिका को नवीनतम परमाणु तकनीक देनी ही पड़ गई। क्यों? क्योंकि चीन में दम है।

घर का बाप बेटे से कहता है, बैठ यहाँ। बेटा बैठ जाता है। तब जाकर दूसरे लोग बाप से बात करेंगे कि ऐसा करो या वैसा करो। बाप का नियंत्रण है बेटे पर। जब तक बाप का बेटे पर नियंत्रण नहीं होगा, जब तक राजा का प्रजा पर नियंत्रण नहीं होगा, उस राष्ट्र से कौन बात करेगा? राजा का प्रजा पर, शासक का जनता पर नियंत्रण आवश्यक है, भले ही वह प्रजातंत्र हो, राज्यतंत्र हो, सैन्य तंत्र हो या और कोई तंत्र। चीन में नियंत्रण है, यहाँ नहीं है।

खैर गाँवों को संभालने के लिए हम चाहते हैं कि कर्मठ और प्रेरित लोग गाँव में आएँ, दो-चार बीघा जमीन लें, अपनी झोंपड़ी या मकान बनाएँ, वहाँ के लोगों से बातचीत करें, उनकी जरूरतों को समझें। गाँव के लोग कैसा कपड़ा पहनते हैं, क्या खाते हैं, कैसे रहते हैं, इन सब चीज़ों को जानें। लोग मुझे सूती साड़ियाँ भेजते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि गाँव की औरतें सूती साड़ियाँ नहीं पहनतीं, बल्कि

चमकीली, रंगदार सिंथेटिक साड़ियाँ पहनती हैं। बहुत सस्ती मिलती हैं, बहुत दिन तक चलती हैं। हम अगर उन्हें सूती साड़ियाँ देते हैं तो नहीं पहनतीं, रख देती हैं शादी-ब्याह के लिये।

ग्रामीण लोग कौन-सी चप्पल पहनते हैं, क्या इस्तेमाल करते हैं, क्या नहीं करते, एक-एक चीज का पता चलना चाहिये। ग्राम-संस्कृति एक अलग संस्कृति है। इनके सोचने का तरीका बिल्कुल अलग है। ये लोग इतने होशियार हैं कि इन लोगों को मालूम रहता है कि आज कौन-सी तिथि है, एकादशी है या द्वादशी, तिथि क्षय हो गई या बढ़ गई। इन्हें यह सब मालूम रहता है, बतलाने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। अपने नियमों, धर्मों और व्रतों का पालन बाकायदा करते हैं। हमने एक लड़की से कहा, तुम आश्रम आकर थोड़ा अंग्रेजी पढ़ो, तो उसने कहा, 'अंग्रेजी पढ़कर करेंगे क्या? गोबर ही तो उठाना है शादी के बाद।' हमने कहा, 'हाँ, बात तो तुम ठीक कहती हो। ठीक है, तुम अंग्रेजी मत पढ़ो, थोड़ा-सा डिस्पेन्सरी का काम सीख लो।' पट्टी कैसे बाँधना, बुखार कैसे देखना, किस प्रकार से घाव को साफ करना, एक्स-रे पढ़ना, यही सब। लड़की थोड़ा पढ़-लिख जाए, थोड़ी पैथॉलॉजी सीख जाए, प्राथमिक उपचार सीख जाए, उसे एक मोपेड दे दो, गाँव-गाँव जाकर यह काम करेगी, पैसा कमाएगी।

गाँव के लोगों को रोजगार की जरूरत है क्योंकि यहाँ खेती अपने में उपार्जन का साधन नहीं है। भारत में कृषि उद्योग या उपार्जन का साधन नहीं, केवल उपभोग का साधन है। उपार्जन के लिये इन लोगों को कुछ बाहर से काम करना पड़ता है। एक बार गाँव का आदमी आत्म-निर्भर हो गया तो हमारे देश की हालत स्विट्ज़रलैण्ड से भी बढ़िया हो जाएगी। बिल्कुल सच्ची बात है। पर इसके लिए ऐसे लोग हों,

जो घर-बार छोड़ कर आएँ, संन्यास लें, गाँव में रहें, सबको सिखाएँ। शादी की जरूरत नहीं, और शादी करो भी तो अपनी बीवी को साथ ले आओ। ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र वगैरह सभी तो शादीशुदा थे।

गाँव में ज़बरदस्त काम होना चाहिए। सरकार यह करेगी नहीं, क्योंकि यहाँ से बदले में कुछ मिलने वाला नहीं है। सरकार वहीं काम करेगी जहाँ लाभ मिलता है। इसलिए आप जैसे लोग यहाँ गाँव में आकर काम करो। पन्द्रह-बीस साल, ज्यादा नहीं। यहाँ के लोग थोड़ी देर में अपने आप समझने लगते हैं, और यहाँ सम्भावनाएँ भी बहुत हैं, जो शहरों में नहीं हैं।

ग्रामीण शिक्षा

मेरी राय में आम मजदूर आदमी के लिए केवल साक्षरता जरूरी है, उसके आगे उनको औपचारिक शिक्षा नहीं, व्यवसायी शिक्षा चाहिए। जैसे यहाँ के बढ़इयों को हम ने अच्छे औजार मंगा कर दे दिए। एकदम आधुनिक नहीं देते, क्योंकि उनसे कुछ फायदा नहीं। मगर थोड़ा-सा बेहतर दे देते हैं। गाँव के लोगों के लिए जो जरूरी है, वहीं तक शिक्षा होनी चाहिए, वैसे ही संसाधन होने चाहिए। गाँववालों को जो कविता पढ़ाते हो, वह भी ग्रामीण पृष्ठभूमि की होनी चाहिए। अब इन्हें राजा राम मोहन राय के बारे में पढ़ाने से कोई फायदा नहीं है, इन्हें तो गाँव के बारे में ही पढ़ाना चाहिये। नदी, नाले, जानवर, चूहे, बिल्ली, गाय, हाथी, ऊँट, बकरी, मच्छर, यह सब इनको सिखाना चाहिए। अब उस पर तो कोई कविता है ही नहीं!

हमारे आने के बाद इतना परिवर्तन हुआ है कि यहाँ के विद्यालयों में अब भीड़ है। यहाँ के गाँवों में रामचरितमानस बहुत प्रचलित है। हमने एक बार शुरू किया तो यह जंगल की आग की तरह फैल गई। रामायण देते-देते हमारा भण्डार पूरे-का-पूरा खाली हो गया। एक लड़की यहाँ आई तो हमने उससे कहा कि तुम थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख लो। उसने कहा, 'क्या करेंगे पढ़-लिखकर।' एक दिन यहाँ रामायण रखी थी। उसने पूछा, 'यह क्या है?' मैंने कहा, 'रामायण है।' वह बोली, 'मुझे भी दो न।' मैंने कहा, 'ले लो।' जब वह रामायण पढ़ना सीख गई, तो मैंने उससे पूछा, 'अब तुम पढ़ना-लिखना सीख गई?' बोली, 'नहीं, हमें पढ़ना-लिखना नहीं आता, रामायण आती है बस।' पढ़ना और रामायण पढ़ना, ये दो अलग चीजें हुईं उसके लिए, यह विचित्र चीज मैंने पाई। अब यहाँ सब रामायण पढ़ते हैं। कहने का मतलब रामायण के बहाने हमने इन लोगों को साक्षरता दी है।

वैभव बनाम संघर्ष

मैं तो एकान्त-पसन्द आदमी हूँ। आज आप सबसे मिल रहा हूँ, लेकिन जैसे ही सीताजी का विवाह खत्म होगा, मेरा मिलना-जुलना बिल्कुल बन्द हो जाएगा। लोगों

से मिलने-जुलने की मेरी प्रवृत्ति कभी नहीं रही। मेरी प्रवृत्ति एकांतवासी की रही है। मुझे अकेले में रहना अच्छा लगता है। अब न तो किताबें पढ़ना अच्छा लगता है, न लोगों से मिलना-जुलना, केवल नाम जपना अच्छा लगता है। उसी में आनन्द आता है। जब मन रुक जाता है, अपने आप, जबरदस्ती नहीं, उस वक्त भगवान का नाम लेने से एक अद्भुत आनन्द आता है। थकावट के बाद सोने में जो आनन्द आता है या तपती गर्मी से ठण्ढे कमरे में आने पर जो आनन्द आता है, वैसा ही आनन्द आता है। इस आनन्द से अब हम अलग नहीं होना चाहते। इसी आनन्द को लेकर यहाँ से जायेंगे, फिर इसी आनन्द को लेकर वापस आयेंगे।

हम मोक्ष पर विश्वास नहीं करते। हम वापस आयेंगे और जब आयेंगे तो धनवान् के घर नहीं, गरीब के घर ही आयेंगे। इस जीवन में हमारा कर्म था जो वैभवशाली घर में जन्मे और वैभवों के बीच पले। बचपन में वैभव-ही-वैभव देखा। पर हमें यह पसंद नहीं है। जब इतना वैभव देखने पर भी उसका भोग नहीं किया, तब फिर वैभव होने से क्या फायदा? हमने जीवन में इतना वैभव देखा पर कभी उसका भोग नहीं कर पाए। करना भी नहीं चाहा, इच्छा ही नहीं हुई। अब हम सोचते हैं कि बिना वैभव के पैदा होते तो अच्छा होता। गरीब के घर, छोटी जात के घर पैदा होना चाहिए। बेहतर हो अगर वेश्यापुत्र या अनब्याही माँ का बेटा बनकर पैदा हो। मैं कुलीन घर में पैदा होना ठीक नहीं समझता। क्या कुलीन और क्या सम्भ्रान्त? यह सब थोथा अहंकार है लोगों के मन में। साधारण घर में, पापी के घर में, चोर के घर में पैदा होना चाहिए। साधु अगर अच्छे घर में पैदा हो तो उसका फायदा ही क्या है?आखिर साबुन का उपयोग कहाँ होता है? साधु को उस घर में पैदा होना चाहिए जिस घर में गंदगी हो। मन में यही सोचा है, आगे भगवान की इच्छा पर है कि कहाँ भेजते हैं। अगर हमें विकल्प दिया जाए तो उसी घर में पैदा होंगे जहाँ नितान्त अभाव हो।

जीवन में अभाव का पक्ष जिसने नहीं देखा, वह जीवन को पहचान नहीं सकता। संघर्ष के बिना जीवन नीरस है। मैं हमेशा सब लोगों को बतलाता हूँ कि दुनिया का सबसे कल्याणकारी देश है स्वीडन। वहाँ न नौकरी की समस्या है, न शादी की, न बच्चे की, न रहने की, न चिकित्सा की। फिर भी वहाँ सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ होती हैं। क्यों? इसलिए कि वे संघर्ष ही नहीं कर रहे हैं। बिना मेहनत के नौकरी मिल जाती है, दवाई मिल जाती है, सब मिल जाता है, संघर्ष ही नहीं करना पड़ता। जहाँ संघर्ष नहीं करना पड़ता, वहाँ अपराध होते हैं, आत्महत्याएँ होती हैं। संघर्ष मनुष्य को आगे बढ़ाने का रास्ता है। यूरोप और अमेरिका के लोगों ने जब तक संघर्ष किया, बहुत आगे बढ़े। अब वहाँ संघर्ष समाप्त हो रहा है, इसलिए उनके पतन के दिन आ रहे हैं।

कोई भी सभ्यता संघर्ष के बिना आगे नहीं बढ़ सकती। जब संघर्ष समाप्त होता है तब उस सभ्यता का अन्त जानो। मैं तो यूरोप में खुलकर कहता था, तुम्हारे दिन

गिने हुए हैं। कुछ हद तक अब वे लोग इस बात को मानते भी हैं। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक विचारक, इतिहासकार–सब यही कहते हैं। जिस सभ्यता में संघर्ष समाप्त हो गया, जहाँ बिजली भी मुफ्त मिल जाती है, खाद और बीज भी सस्ते मिल जाते हैं, रेलवे टिकट भी सस्ती मिल जाती है, वहाँ मेहनत क्यों करोगे जी? यह अपंग संस्कृति का लक्षण है। हमारे गाँव के लोग जो हिन्दुस्तान में जीवित हैं वे इसलिये जीवित हैं कि उन्हें पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है। यहाँ से लोग मजदूरी के लिए देवघर जाते हैं, वहाँ एक जगह पर काम के लिए खड़े रहते हैं। कई बार शाम को बिना मजूरी के भी लौटना पड़ता है। घर में खाना नहीं है, बीवी बीमार है, किससे बोलें? किसी से कर्जा लेते हैं, डॉक्टर के पास जाते हैं, वह ढाई सौ रुपये मार लेता है। यह जाँच कराओ, वह जाँच कराओ, एक्स-रे कराओ। इसी संघर्ष में ये लोग अपना जीवन जी रहे हैं।

आप कहते हैं संघर्ष से आदमी आगे बढ़ता है। भारत तो हमेशा संघर्ष करते रहा है, फिर भारत आगे क्यों नहीं बढ़ता?

भारत में कई हजार वर्षों से कुछ ऐसी गलतियाँ होती आई हैं कि इसके विचारों को पंगु बना दिया गया है। विभिन्न धर्म, मत और शासक आए, जिनकी बदौलत विचार निरंतर पंगु होते गए। यहाँ के लोगों को बार-बार बोला गया कि तुम यह काम गलत करते हो, वह काम गलत करते हो। बौद्ध धर्म ने कहा, 'तुम बलि प्रथा बन्द करो, गलत है।' बलि प्रथा भले ही गलत हो, लेकिन वह अभी भी चल रही है वैसी की वैसी। फर्क इतना है कि उस वक्त बलि प्रथा सार्वजनिक होती थी, अब निजी होती है। बन्द नहीं हो सकी। लेकिन इससे हुआ यह कि यहाँ के लोगों के मन में अपूर्णता और हीनता की भावना बढ़ गई।

लोग कहते हैं, 'यहाँ जात-पात बहुत है, छुआछूत बहुत है।' हाँ भाई, छुआछूत बहुत गलत है, पर वह सब जगह है। मुझ से पूछो, मैं तो दुनिया घूमकर आया हूँ, दूसरे देशों में रहकर आया हूँ। जितना नस्लवाद और जातिवाद यूरोप में है, उतना हिन्दुस्तान में भी नहीं है। वहाँ जिप्सी या बंजारा लोग एक हजार साल से रह रहे हैं, लेकिन आज तक उनके रहने के लिए ठिकाना नहीं, क्योंकि वे दूसरी नस्ल के हैं। न वे रूस में बस पाए हैं, न रोमानिया में, न फ्रांस में, न स्पेन में। कहीं भी बस नहीं पाते हैं। चार साल कहीं रहते हैं, फिर वहाँ से निकाले जाते हैं। उनके बच्चे स्कूल में भर्ती नहीं हो पाते हैं, पढ़ नहीं पाते हैं, क्योंकि दूसरी जात के हैं।

हिन्दुस्तान में भी जात-पात है मगर वहाँ जैसा हाल नहीं है। शादी में नाई को बुलाना पड़ता है, उसके बिना काम होगा ही नहीं। घर में कोई पशु मर जाए तो चमार को बुलाना ही पड़ता है। माने उसका भी एक स्थान है। ठीक है, सुधार होना चाहिये, मैं मानता हूँ, मगर हम उतने गिरे नहीं हैं। वहाँ तो एक नस्ल दूसरी नस्ल को सामने देख नहीं सकती। सोवियत संघ के समय युगोस्लाविया एक देश था जिसके बाद में कई टुकड़े किये गए। एक टुकड़े का नाम पड़ा सर्बिया, दूसरे का मैसिडोनिया, तीसरे का बोस्निया, चौथे का क्रोएशिया, पाँचवे का स्लोवेनिया। ये छोटे-छोटे राष्ट्र बन गये। यह कोई पुरानी बात नहीं बतला रहा हूँ, बीसवीं सदी के आखिरी दस-पन्द्रह सालों की बात कह रहा हूँ।

'तुम्हारे यहाँ जाति प्रथा है' ऐसा कहकर हम लोगों के मन में हीनता की भावना बनाई गई है, जबकि जातिवाद और नस्लवाद सारी दुनिया में है। अमेरिका में भी है। वहाँ के मूल निवासियों को रेड इंडियन कहते हैं। उनके रहने के लिए अलग आरक्षित स्थल हैं, जो बड़े उपेक्षित और पिछड़े हुए हैं। ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों को अबॉरीजीन्स कहते हैं, वे भी अलग रहते हैं। उनकी जमीन हथिया ली गई थी, अब उनके निवास स्थल ही अलग हैं। यह हाल है उन लोगों का। फ्रांस में जब कोई लड़की किसी जर्मन लड़के से सम्बन्ध रखती थी तो लड़की को पकड़कर घर में उसका सर मुड़ा देते थे। इतना एक-दूसरे से घृणा करते थे। फ्रांस के लोग इंग्लैण्ड के लोगों को भी एकदम नापसंद करते हैं। फ्रांस में मेरी एक पुरानी शिष्या है, जो कहा करती थी कि अंग्रेजी मूर्खों की भाषा है। आप मेरे गुरु हो और अंग्रेजी बोलते हो, इसलिए हम अंग्रेजी बोलते हैं, नहीं तो अंग्रेजी को लानत है। इस तरह की मानसिकता है वहाँ के लोगों की।

हम लोगों को यहाँ हीनता की भावना सिखाई गई, इस वजह से हम लोग गिरे हैं। दूसरी अहम चीज यह है कि हिन्दुस्तान में जो शासक लोग थे, वे सब भोग में पड़े हुए थे। उन्हें असलियत का कुछ पता नहीं था। नहीं, राजा को प्रजा के साथ रहना पड़ता है, उनकी जरूरतों को समझना पड़ता है।

–7 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

अमिट स्मृतियाँ

स्वामी शंकरानन्द सरस्वती

श्री स्वामीजी के साथ अनेक ऐसे अवसर आये जो बहुत ही मर्मस्पर्शी थे। उन सभी के बारे में बतलाना तो संभव नहीं है, लेकिन श्री स्वामीजी के साथ हुई अपनी पहली मुलाकात की चर्चा जरूर करूँगा। मैं सन् 1965 के मई महीने में मुंगेर आया था। उन दिनों श्री स्वामीजी 1 से 7 नवम्बर तक एक योग सम्मेलन का आयोजन करते थे। उस छोटे-से आश्रम में 200-250 लोग पहुँचते थे और उसमें अच्छे-अच्छे संत भी आते थे। मेरे एक मित्र ने मुझसे पूछा कि आश्रम चलोगे। मैं तो जानता भी नहीं था कि मुंगेर में कोई आश्रम है, इसलिए सबसे पहले मैंने अपने मित्र से पूछा कि मुंगेर में आश्रम भी है क्या! मेरे मित्र ने कहा, 'हाँ एक स्वामीजी हैं जो योगाश्रम चलाते हैं और वे नवम्बर के महीने में विश्व योग सम्मेलन का आयोजन करते हैं। यह सात दिनों का आयोजन है जिसमें सुबह-शाम सत्संग, भाषण तथा अन्य गतिविधियाँ भी होती हैं।'

आश्रम के विषय में जानने के बाद मैं उस वर्ष के आयोजन में भाग लेने के लिए तैयार हो गया। उस समय विश्व योग सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाँच रुपया शुल्क लगता था। मैंने अपने मित्र को ही पाँच रुपये दे दिए, उसने मेरे लिए पंजीकरण शुल्क जमा कर दिया और फिर मैं पहली नवम्बर को नौ बजे आश्रम पहुँचा। वहाँ मंच पर कई वक्ता बैठे हुए थे। श्री स्वामीजी मंच के नीचे मध्य में बैठा करते थे, मंच के ऊपर नहीं बैठते थे। जब कोई वक्ता बोल लेता था, तब श्री स्वामीजी खड़े होकर उस वक्ता के प्रति आभार व्यक्त करते और फिर अपनी बात भी कहते थे।

पहले दिन जब उन्होंने अपना उद्बोधन शुरू किया तो मैंने उनकी आवाज में एक ऐसा आकर्षण अनुभव किया कि मेरा ध्यान केवल उन्हीं की बातों पर टिका रहा। उसके बाद कुछ और याद नहीं रहता था। मैं आश्चर्यचकित था। सात दिनों तक रोज सबेरे 9 से 11 बजे तक और संध्या 3 से 5 बजे तक करीब-करीब यही होता था। इसके बाद मुझे लगा कि यही वह स्थान है जहाँ मुझे आश्रय मिल जाए तो मेरे जीवन को एक दिशा मिल जाए। इस प्रकार मैं श्री चरणों में आया, फिर तो मेरा साईं मुझमें ज्यों पुहुपन में वास।

प्रारंभिक दिनों में यह आश्रम इस किले के बाहर एक छोटे भवन में चलता था। श्री स्वामीजी वहीं रहते थे और उनके साथ उनकी शिष्या स्वामी आत्मानन्द थीं। साथ

ही संन्यासी सुभद्रा, स्वामी सच्चिदानन्द और स्वामी प्रार्थनानन्द भी रहते थे। उन दिनों श्री स्वामीजी का सत्संग सुनने के लिए मुंगेर के गिने-चुने बीस-पचीस लोग संध्या में आया करते थे और प्राय: वही लोग आश्रम के अन्य कार्यक्रमों में भी आते थे।

एक बार उस आश्रम की पेंटिंग हो रही थी। उस समय आश्रम की आर्थिक स्थिति सामान्य थी, इसलिए श्री स्वामीजी आश्रम में उपस्थित संन्यासियों के साथ मिलकर आश्रम की उन दीवारों को एक दिन पहले रगड़ते थे जिनकी अगले दिन पेंटिंग होनी होती थी। एक दिन जब श्री स्वामीजी धोती कसकर हमलोगों के साथ आश्रम के बाहर की दीवारों को रगड़ रहे थे, उस समय शहर के एक सज्जन आये और कहा कि हम स्वामीजी से मिलना चाहते हैं। संयोगवश श्री स्वामीजी गेट के पास ही दीवार को रगड़ रहे थे। उन्होंने उस सज्जन से कहा, 'आप वहाँ बैठिये, स्वामीजी थोड़ी देर में आ जायेंगे।' चूँकि श्री स्वामीजी दीवार रगड़ रहे थे, इसलिए उनके शरीर पर काफी धूल पड़ी हुई थी। वे भीतर गये और थोड़ा झाड़-पोंछ करने के बाद उस सज्जन से मिलने के लिए आए तो उस व्यक्ति ने उनसे पूछा कि स्वामीजी कहाँ हैं। जब उस व्यक्ति को बतलाया गया कि यही स्वामीजी हैं जिनसे आप मिलना चाहते हैं तो वे सज्जन इतने चौंके, इतने आश्चर्य में पड़ गए कि बड़ी देर तक कुछ बोल ही नहीं पाए। केवल चुपचाप बैठे रहे और श्री स्वामीजी को देखते रहे।

उन्हीं दिनों निरंजनजी अम्माजी और सत्यव्रतजी के साथ आश्रम में आये थे।

उस समय वे पाँच-छ: साल के रहे होंगे। मैं प्राय: रविवार के दिन आश्रम आता था और दिन का प्रसाद आश्रम में ही लेता था। एक बार जब भोजन करने के बाद मैं थाली धो रहा था उसी समय एक बालक आया और मेरे कंधे पर बैठ गया। अपनी कोमल हथेलियों से उसने मेरी आँखें मूँद दीं और कहा कि हम आपके कंधे पर चढ़ गए हैं, अब आप हमें घुमाइए। उस समय मैं समझ नहीं पाया कि मेरे कंधे पर कौन बैठा है। मैं देख भी नहीं सकता था क्योंकि उसने मेरी आँखें बन्द कर रखी थीं। हम खड़े हो गये और उस बच्चे को घुमाने लगे। यह देखकर श्री स्वामीजी ने कहा, 'अरे! तुम यह क्या कर रहे हो?' यह बात सुनते ही मेरी पीठ पर बैठा बालक कूदकर भाग चला। तब मैंने पहचाना कि वह बालक निरंजन है!

Swami Satyananda
14.9.69

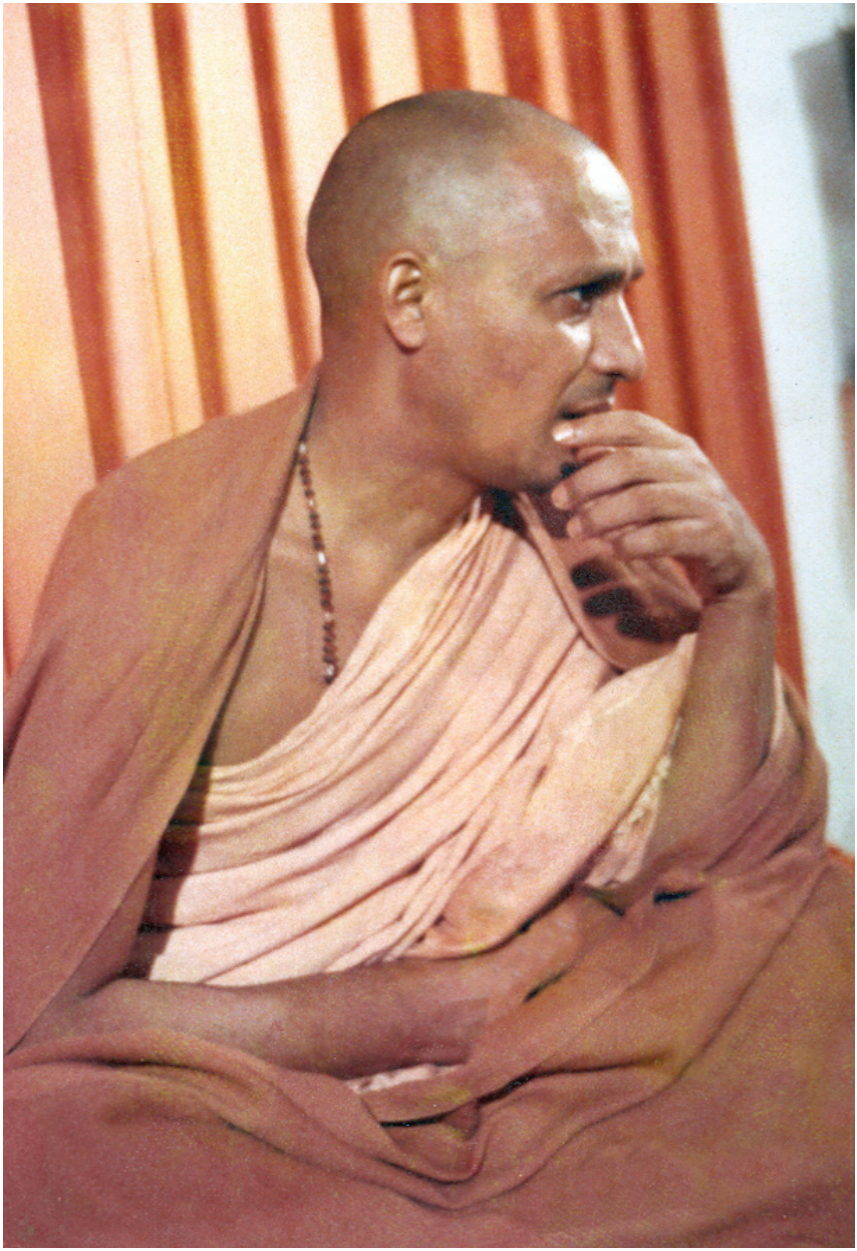

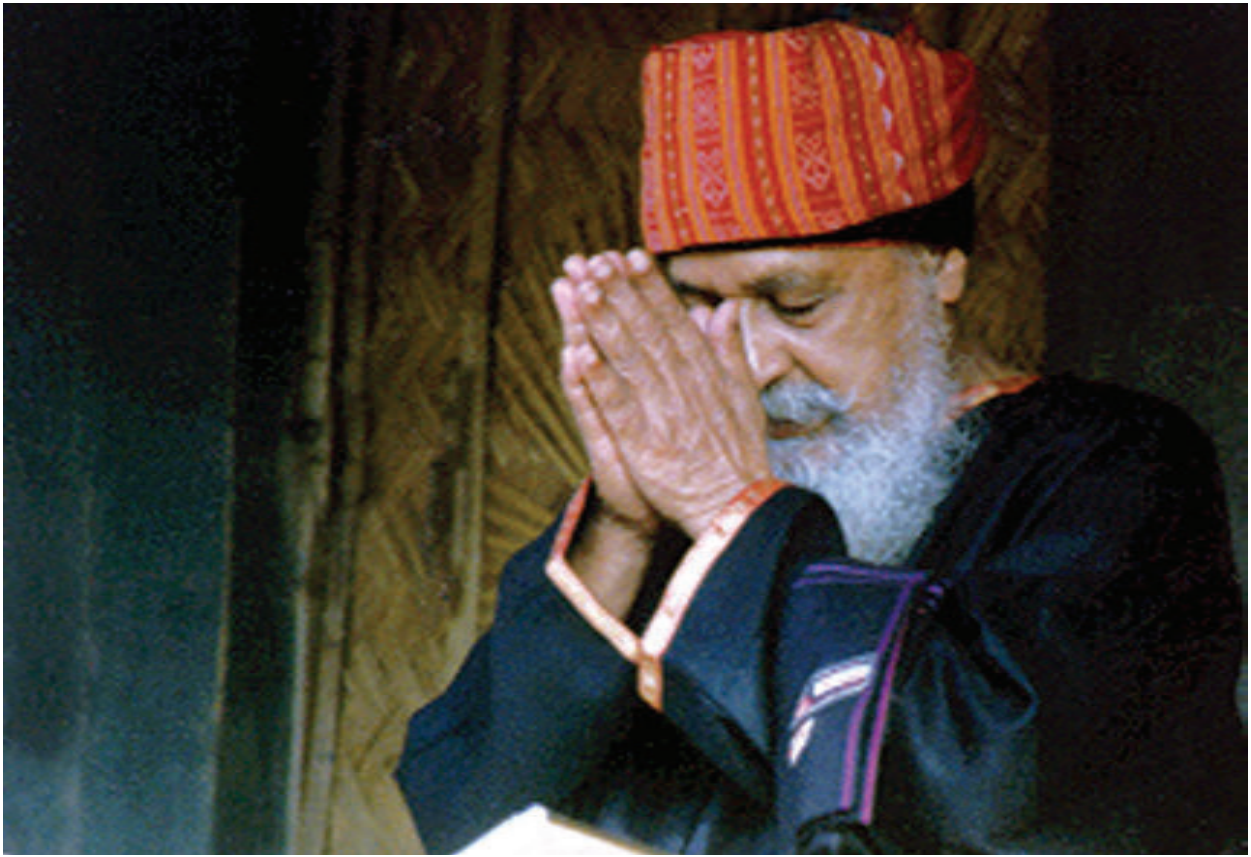

उन दिनों आश्रम में कभी भोज का आयोजन होता तो संन्यासियों को लगता कि आज उत्सव है। सामान्यत: रोज प्रात: दलिया मिलता जिसमें पानी ज्यादा और दलिया कम होता था। इतना कम कि बहुत खोजने के बाद नीचे गिलास की पेंदी में थोड़ा-सा दलिया मिलता था। वही होता था नाश्ता और वही चाय। कभी-कभी चाय की जगह पर भूने हुए गेहूँ के चूर्ण को पानी में मिलाकर कॉफी बनाई जाती थी। उस समय आश्रम में जो भोजन मिलता था, अगर उसकी चर्चा करें तो आज के लोगों को बहुत आश्चर्य होगा। स्वामी निरंजन जी ने यह बात कई बार कही भी है कि बाजार में सब्जियों के जो पत्ते लोग छाँट दिया करते थे, उन्हीं पत्तों को हमलोग बोरे में भरकर आश्रम लाया करते थे और उन पत्तों को फिर काट-छाँट कर उसमें जो थोड़ा-बहुत खाने लायक रहता था उसे उबालकर उसमें थोड़ा नमक डाल देते थे और सब्जी तैयार हो जाती थी। गोयनकाजी के यहाँ से महीने में एक दिन या जब कभी उनके यहाँ कोई आयोजन होता, तब भोजन आता था। वह दिन सब लोगों के लिये त्योहार-सा होता। बाकी दिन जो भोजन बनता था, उसमें मसाले के नाम पर केवल नमक होता था।

आश्रम के बाहर श्री स्वामीजी के सत्संग का आयोजन पहली बार पटना में हुआ था। आश्रम की आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि हमलोग बहुत ज्यादा खर्च नहीं कर सकते थे। हमलोगों ने एक गाड़ी भाड़े पर ली और यहाँ से लेकर पटना तक रास्ते में जगह-जगह स्कूलों में श्री स्वामीजी का कार्यक्रम रखा। कहीं भोजन तो कहीं जलपान करते हुए पटना पहुँचे। पटना कॉलेज में सात दिनों तक श्री स्वामीजी की कक्षाएँ और सत्संग आयोजित हुए। उस समय पटना कॉलेज के प्रिंसिपल, श्री महेन्द्र प्रताप जी, श्री स्वामीजी के पूर्व-परिचित थे। जब उन्हें पटना कॉलेज में श्री स्वामीजी के आगमन का पता चला तो वे बिना विलंब किए वहाँ आए, श्री स्वामीजी को मंच पर बैठाया और फिर श्री स्वामीजी का परिचय देना शुरू किया। वहाँ सात दिनों तक एक अद्‌भुत माहौल बना रहा। श्री स्वामीजी के सत्संगों में अच्छी संख्या में लोग उपस्थित हुए। पटना की इस यात्रा के बाद श्री स्वामीजी का आश्रम के बाहर लगातार कार्यक्रमों का आयोजन होने लगा।

आश्रम उस स्थिति से धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया। उस छोटे-से आश्रम से यह स्थान, जो अब गंगा दर्शन है, सीधा दिखलाई पड़ता था और श्री स्वामीजी अक्सर कहा करते थे कि वह कर्णचौरा योग का स्थान होगा। जब भी हमलोग एक साथ बैठते थे तो इस स्थान की चर्चा होती थी। कई वर्षों तक यह चर्चा चलती रही, और अन्तत: सत्तर के दशक के अंत में किसी तरह यह स्थान मिल गया। फिर यहाँ निर्माण कार्य शुरू हुआ जिसकी देख-रेख के लिए श्री स्वामीजी रोज यहाँ आकर बैठते थे। उसके बाद आश्रम ने जो उड़ान भरी तो उसका वेग रुका नहीं। पर उस समय हमलोग जिस स्थिति में थे उसकी कल्पना आज की पीढ़ी नहीं कर सकती है।

सन् 1968 में तीन महीने का एक योग सत्र संचालित हुआ था जिसमें मैंने भी भाग लिया था। जब मैंने उस सत्र में नामांकन लिया तो मेरे पिताजी ने अपने एक मित्र को, जो एक वरिष्ठ अधिकारी थे, मेरे पास भेजा। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम तीन महीने के लिए आश्रम क्यों जा रहे हो? तुम्हारा परिवार है, बच्चे हैं, तुम साधु बनने क्यों जा रहे हो? अगर तुम वहाँ जाने का फैसला करते हो तो तुरंत तुम्हारा तबादला यहाँ से कहीं और हो जाएगा।' और वास्तव में मेरा तबादला हो भी गया। लेकिन मैं मुंगेर छोड़कर गया नहीं, बल्कि मैंने छुट्टी का आवेदन दे दिया। और छुट्टी भी बड़े रोचक ढंग से मिली।

योग सत्र के पहले दिन शंखप्रक्षालन और कुंजल क्रिया का कार्यक्रम था। मैंने श्री स्वामीजी से कहा, 'स्वामीजी, अभी छुट्टी नहीं मिल रही है। ऐसे में हम इस सत्र को कैसे पूरा करेंगे?' श्री स्वामीजी ने कहा, 'सत्र का पहला दिन रविवार है। उस दिन तो तुम आ ही सकते हो। उस दिन शंखप्रक्षालन और कुंजल होगा, उसमें भाग ले लेना।' सत्र के पहले ही दिन कुंजल करने में मैं फिसलकर गिर पड़ा और मेरे दायें हाथ के अंगूठे में फ्रैक्चर हो गया। मैंने अंगूठे की पट्टी करवाई और अगले दिन कार्यालय में जाकर अधिकारी से कहा, 'अब मैं दस्तखत भी नहीं कर सकता हूँ। अब तो मुझे छुट्टी दिला दीजिए।' अधिकारी ने कहा, 'यदि तुम आश्रम जाना ही चाहते हो तो हम क्या कर सकते हैं। तुम्हारी छुट्टी की अनुशंसा कर देते हैं, आगे तुम्हें जो करना है करो।' और मैंने हाथ में पट्टी लगाये हुए ही तीन महीने का योग सत्र पूरा किया! यह मेरा परम सौभाग्य रहा है कि मुझे श्री स्वामीजी के चरणों में रहने का अवसर मिला।

एक और घटना मैं आपलोगों को बतलाना चाहूँगा। सरकारी नौकरी में आने से पहले मैं एक हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक था। जब मैं प्रधानाध्यापक का पद छोड़कर सरकारी नौकरी में आया तो मेरे एक सहकर्मी ने उस हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक का पद संभाला। उसके कार्यकाल में हाई स्कूल में कुछ वित्तीय-अनियमिततायें हुईं जिनको लेकर पुलिस केस हुआ। चूँकि उस वित्त-वर्ष के प्रथम नौ महीने मैं वहाँ था, इसलिए मेरा नाम भी उस केस में आ गया। उस समय मेरा तबादला मुंगेर से गिरिडीह हो गया था। उन्हीं दिनों गिरिडीह में श्री स्वामीजी का कार्यक्रम आयोजित किया गया था, परंतु कुछ अप्रत्याशित कारणों से श्री स्वामीजी कार्यक्रम में नहीं आ पाए और उनके स्थान पर स्वामी आत्मानन्द जी उस कार्यक्रम में आईं।

पहले दिन के कार्यक्रम की समाप्ति पर जब मैं रात को लगभग नौ बजे घर लौटा तो मेरे बच्चों ने कहा, 'पापा, अखबार में सूचना निकली है कि मुंगेर में पुलिस आपको गिरफ्तार करने के लिये ढूँढ रही है।' मैं बहुत परेशान हो गया। उस समय केवल श्री स्वामीजी की ही याद आई। चिंता और परेशानी की हालत में उसी रात गिरिडीह से ट्रेन पकड़कर मैं मुंगेर आया और सुबह श्री स्वामीजी के पास पहुँचा।

मुझे देखते ही उन्होंने पूछा, 'अरे! तुम यहाँ हो? आत्मानन्द तो तुम्हारे यहाँ गई है।' मैंने कहा, 'वहाँ की सारी व्यवस्था हो गई है।' संक्षिप्त वार्तालाप के बाद मैंने अपने हाथ की सारी अँगूठियाँ, जो तरह-तरह के ग्रहों के लिये पहनी थीं, उन सभी को निकाल-निकाल कर श्री स्वामीजी के सामने रखना शुरू किया। उन्होंने पूछा, 'यह क्या कर रहो हो?' मैंने उन्हें सारी कहानी बताई और कहा कि ऐसी स्थिति में ये अँगूठियाँ मेरी रक्षा नहीं कर सकती हैं, अब आप ही अन्तिम आश्रय हैं।

उस समय उन्होंने मुझसे जो कहा वह मुझे आज तक स्मरण है और उसी बात ने मेरे जीवन को बदला भी है। उन्होंने अंग्रेजी में कहा, 'If you have done wrong, face it coolly and if you have not done wrong, then face it boldly. जाओ और जाकर केस देखो।' मैं सीधा अदालत गया और वहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी और फिर ज़मानत भी मिल गई। ज़मानत लेकर मैं गिरिडीह लौट आया। फिर उस केस में क्या हुआ, पता ही नहीं चला। अदालत के द्वारा कभी मेरी बुलाहट भी नहीं हुई। बाद में पता चला कि केस समाप्त भी हो गया।

ये दो बातें जो गुरुजी ने कहीं, वे ही मेरे जीवन का आधार बनीं और आज तक हैं। उस समय जो चीजें मेरे अन्दर आ सकीं, वही आज तक मेरे अन्दर जीवित हैं। उस समय श्री स्वामीजी ने बहुत गंभीर स्वर में कहा था, स्नेहपूर्वक नहीं, लेकिन वह वाक्य मेरे जीवन का मूलमंत्र बन गया। इसी रूप में संभवत: उनका अनुग्रह मिल गया और आज मैं जो भी हूँ, वह मैं नहीं, वह अहैतुकी कृपा ही है।

गीता के आलोक में आत्मभाव का सिद्धांत

ध्यान योगी जब ध्यान की स्थिति में चला जाता है और उसे अपने अन्दर ब्रह्मसंस्पर्श यानि ब्रह्म के स्पर्श का आनन्द प्राप्त होने लगता है उसके बाद उसके अन्दर एक भावना जागृत होती है, जिसका नाम है आत्म-भावना। यह आत्म-भावना क्या है? संसार में जितने भी प्राणी हैं, उनमें उसको अपनत्व का भाव होता है। परायापन महसूस नहीं होता। द्वैत भाव उसमें बिल्कुल नहीं रहता। उसमें अद्वैत भाव रहता है और सभी प्राणी उसके अन्दर में हैं, ऐसा अनुभव करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥6.28॥

जो योगी ध्यान-योग में निश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो गया वह समद्रष्टा हो जाता है। जिस प्रकार से हम अपने पुत्र में या अपने परिवार के अत्यन्त प्रिय व्यक्ति में अपनत्व को देखते हैं, उसी प्रकार का अपनत्व और शायद उससे भी अधिक अपनत्व योगी को संसार के अन्य जीवों में दिखता है। संसार के प्राणियों के सुख और दुःख उसके हृदय पर लगते हैं। दूसरे जीवों की जो वेदना होती है, जो तकलीफें होती हैं, उनका अनुभव उसे स्वयं अपने अन्दर में होता है। तब जाकर उसके अन्दर करुणा जागृत होती है।

सब लोग आत्मा के स्वरूप हैं–ऐसा अनुभव जीवन में यदि सबको हो जावे तो समाज में जितना भी वैर भाव और संघर्ष है वह मिट सकता है। समाज में आज ऊँच-नीच की जो भावना है, उसी के कारण व्यक्ति अपने से ऊँचे के साथ प्रतिस्पर्धा करता है और निचले व्यक्ति से घृणा करता है। इससे समाज का वातावरण बहुत कलुषित हो जाता है। यह मनुष्य की बहुत बड़ी कमजोरी है, जिसे गीता के अनुसार ध्यान के द्वारा दूर किया जा सकता है।

ध्यान योग का परिणाम हुआ समभाव या समदर्शन। समदर्शन अर्थात् सब में समानता का दर्शन। सब में मैं हूँ ऐसा भाव। दूसरे का कष्ट मेरा कष्ट है। अगर किसी व्यक्ति को धन या यश की प्राप्ति हो गई हो तो मुझे खुशी होनी चाहिए और मुझे खुशी तभी होगी जबकि मैं उसे अपना समझूँगा।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6.29॥

सब प्राणियों में अपने को देखने का मतलब यही हुआ कि सब जीवों में उसे अपनत्व का अहसास होता है। लेकिन प्रायः होता क्या है कि यदि किसी व्यक्ति को

कष्ट होता है तो हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। हम सोचते हैं, अच्छा हुआ, बड़ा बदमाश आदमी था। यह इसलिए होता है कि हम उसे अपना नहीं समझते। हम अपनी आत्मा, अपनी खुदी को आगे नहीं बढ़ाते। मेरी आत्मा इस शरीर की चहारदिवारी में ही सीमित है। इस आत्मा को शरीर की चहारदिवारी से बाहर निकालकर पति और पत्नी में, फिर बच्चों में, फिर नौकरों में, फिर पड़ोसियों में, फिर समाज में, फिर गाँव, राष्ट्र, देश और अंत में पूरे विश्व तक फैलाना चाहिए। इसे कहते हैं आत्म-भाव का विस्तार।

आत्म-भाव का यह विस्तार महापुरुषों में होता है। जिसमें भी इस आत्म-भाव का विस्तार होगा उसके अन्दर एक और गुण जागृत होगा, जिसका नाम है करुणा। दया नहीं, वह दूसरी चीज है। दया तो हमको, आपको, सबको होती है, लेकिन करुणा बिना समभाव के नहीं हो सकती। करुणा हृदय के अन्दर एक पवित्र भावना का नाम है। करुणा कोई दया नहीं है कि कोई व्यक्ति दु:खी है और तुम सोच रहे हो कि बेचारा दु:ख पा रहा है। नहीं, हमें जो करुणा होती है उसमें हम यह नहीं सोचते हैं कि दूसरा दु:ख पा रहा है, बल्कि हमें तो ऐसा लगता है कि मेरा कोई अपना दु:ख पा रहा है। उसमें मुझे ही दु:ख होता है, जैसे कि पुत्र के दु:ख में माँ-बाप को कितना कष्ट होता है, पति के बीमार पड़ जाने पर पत्नी को कितना कष्ट होता है, अपने माता-पिता को कष्ट हो जाने से बच्चों को कितना दु:ख होता है, रातभर नींद नहीं आती। यह है आत्म-भाव का विस्तार।

इसी बात को श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता में समझाने की कोशिश की है कि ध्यान योगी की आत्मा इस नौ दरवाजे के बंगले के अन्दर नहीं रहती, बल्कि उसकी सीमा इतनी विस्तृत हो जाती है कि उसे ऊँचे ब्राह्मण में, नीचे माने जाने वाले शूद्र में, साधु-संत में या किसी दुष्ट में कोई अंतर मालूम नहीं पड़ता। बल्कि वह यही देखता है कि दूसरे का जो कष्ट है वह मेरा कष्ट है और मेरा जो सुख है, वह उसका सुख है। अपने सुख को वह दूसरों को देने और दूसरों के दु:खों को खुद बाँट लेने की कोशिश करता है। यह आत्म-भाव वाले ज्ञानी का लक्षण है। किसी व्यक्ति में आत्म-भाव का लक्षण नहीं हो तो ऐसा जानना चाहिए कि इसने अभी ध्यान योग में वह अवस्था प्राप्त नहीं की है।

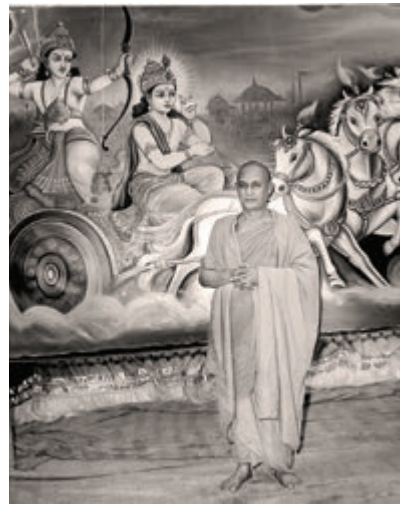

योग मार्ग के अनुसार ऐसा कहते हैं कि ध्यान करने के बाद मनुष्य की खोपड़ी के अन्दर ईर्ष्या और द्वेष को उत्पन्न करने वाली जो प्रणालियाँ हैं वे समाप्त हो जाती हैं, जिसकी वजह से उस व्यक्ति के अन्दर अपने आप दूसरों के प्रति प्रेम पैदा होता है। आज यदि आपकी निन्दा होती है या प्रशंसा होती है या लोग आप से द्वेष करते हैं या लोग आप से अनुराग करते हैं या लोग आपकी मदद करते हैं अथवा लोग आपके मार्ग में बाधक बनते हैं तो आपकी भावना में अन्तर क्यों आना चाहिए? अन्तर आना ही नहीं चाहिए, क्योंकि मेरा ही तो बेटा मुझे गाली देता है, मेरी ही बेटी तो मेरी चापलूसी करती है। जैसे बच्चे लोग माँ-बाप की चापलूसी करते हैं न, गोद में ले जाकर खूब रगड़ते हैं अपना सिर, चापलूसी भर है। उसी प्रकार से मान लो बेटा बाप की जेब से थोड़ा-सा पैसा चोरी ही कर ले, करते ही हैं, सभी ने थोड़ा बहुत किया ही होगा। क्या होता है? दो-चार चाँटे, आखिर अपना ही तो बेटा है। जब कभी कोई आदमी आपके साथ कैसा भी व्यवहार करे, आपके मन में जो सहज प्रतिक्रिया होगी उसके दो आधार होते हैं। एक प्रतिक्रिया उसे पराया समझकर होगी, और दूसरी प्रतिक्रिया उसे अपना समझकर होगी। बस सारा समाज इन्हीं दो भावनाओं पर निर्भर करता है।

मस्तिष्क में जो ईर्ष्या-द्वेष, अपने-परायेपन या मित्रता-शत्रुता की भावना होती है, वह भावना ध्यान के द्वारा नहीं रहनी चाहिए। इस भावना के न रहने से दो फायदे होते हैं। मित्र तो मित्र रहते ही हैं, शत्रु भी शत्रुता नहीं निभा सकते ज्यादा दिन तक। उनकी शत्रुता कमजोर पड़ जाती है। यह समभाव की बहुत बड़ी विशेषता है। ध्यान योगी को अपनी आत्मा में सब प्राणियों के दर्शन होते हैं और वह सर्वत्र, केवलमात्र अच्छे लोगों में नहीं, बुरे लोगों में भी समद्रष्टा बनता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥6.30॥

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, मैं उसको कभी छोड़ता नहीं और वह भी मुझे छोड़ता नहीं। भगवान का यह वचन है, आश्वासन वाक्य है भक्त के लिए। जो अपने इष्ट को सब रूपों में देखता है और संसार के सब

प्राणियों को अपने इष्ट में देखता है, उसके लिए भगवान कभी ओझल नहीं होते और वह भी भगवान के लिए कभी ओझल नहीं होता। प्रणश्यामि का मतलब यहाँ पर अदृश्य होने से लगाना चाहिए। वह मेरे लिए ओझल नहीं होता। क्यों? अरे भाई, आपने भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन नहीं किये तो क्या, सब रूपों में भगवान है आपने ऐसा सोचा, ऐसी भावना तो की। इसलिए भगवान आपसे ओझल नहीं होते हैं। वे कहते हैं *'तस्याहं न प्रणश्यामि'*, मैं उससे कहीं दूर नहीं हूँ, उसके एकदम पास हूँ। क्यों? भले ही वह मेरे चतुर्भुज रूप को नहीं देखता, मेरे साकार-निराकार रूप को नहीं देखता, किन्तु मेरा जो सर्वाकार रूप है, उसको तो देखता ही है। वह भी मेरे लिए ओझल नहीं होता, मैं उसकी बराबर खैर-खबर रखता हूँ।

इसलिए योग शास्त्र का यह मत है, सब संतों और महात्माओं का यह मत है कि ध्यान योग, ज्ञान योग, राज योग आदि जितने भी योग हैं, सब योगों की समाप्ति जहाँ पर होती है वहाँ पर दो भाव प्रत्यक्ष होते हैं, या तो आत्म-भाव या फिर परमात्म-भाव। आत्म-भाव का मतलब होता है, मेरी तरह सबको कष्ट हो रहा है, सबका कष्ट मेरा कष्ट है। परमात्म-भाव में जिस इष्ट को तुम मानते हो, उस इष्ट को सब में देखने का अनुभव करो। उसकी भावना सबमें करनी चाहिए और उसमें सबकी भावना करनी चाहिए। इससे क्या होता है? सदा भगवान का अनुभव बना रहता है और थोड़ी देर के लिए भी भगवान का अनुभव शेष नहीं रहता।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥6.31॥

सब प्राणियों में मुझे देखकर जो मेरी उपासना करता है, वह ध्यान योगी सदा मुझमें ही रहता है। वह कहीं भी रहे, किसी भी स्थिति में रहे उसका निवास मुझ में है। यह भगवान ने क्रान्तिकारी वाक्य बोला है। सब प्राणियों में जो मुझे भजता है—अरे भाई, सब प्राणियों में भगवान को कैसे भजोगे? आरती करोगे, पूजा करोगे, अभिषेक करोगे? नहीं, सब प्राणियों में भगवान का जो भजन है वह व्यवहार के ही द्वारा किया जाता है, वह विश्वास और श्रद्धा के बल पर किया जाता है। हमारी आपके प्रति क्या भावना है, बस यही भावना निर्णय करती है कि हम आपका भजन करते हैं या नहीं।

भगवान कहते हैं—*सर्वभूतस्थितं यो मां भजति*—सब प्राणियों में मैं हूँ, इस प्रकार जो मेरा भजन करता है। इसका मतलब यह नहीं कि अब आप सब लोगों का नाम लेकर कीर्तन करना शुरू कर दो। उससे कुछ होगा भी नहीं। तात्पर्य यह है कि आपके अन्दर, मेरे अन्दर, सबके अन्दर भगवान है, ऐसा भाव अपने मन में सचमुच में ले आने से श्रद्धा होगी। जैसे प्रेम भावना, क्रोध भावना या ईर्ष्या

भावना होती है, उसी प्रकार श्रद्धा की भावना भी होती है। यदि मैं यह समझूँ कि आप सब मेरे दुश्मन हैं तब मेरे अन्दर कौन-सी भावना होगी? निश्चित रूप से क्रोध की भावना होगी। यदि मैं यह समझूँ कि आप मेरे श्रद्धेय हैं तो आपके प्रति मेरे मन में श्रद्धा की भावना होगी। उसी प्रकार से श्रद्धा की भावना जगत् के प्रति जागृत हो तो समझना कि भगवान उसमें है। संसार में भगवान का निवास है, प्रत्येक जीव में भगवान का निवास है, ऐसा सोचकर उसके प्रति श्रद्धा की भावना आनी चाहिए। जब सब लोगों के प्रति श्रद्धा की भावना आयेगी तब हमारा व्यवहार दूसरे के प्रति कैसा रहेगा? जैसा अपने श्रद्धेय के प्रति रहता है। यह व्यावहारिक दर्शन है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥6.32॥

ध्यान योगियों में भी सबसे श्रेष्ठ किसको मानना चाहिए? जो सबको, सब स्थानों में, आत्मौपम्येन यानि अपने सरीखे देखता है। अगर हमें कोई चाँटा मारे तो हमें कितना कष्ट होगा? वैसा ही चाँटा आपको लगे तो हमें मालूम पड़ना चाहिए कि भाई, इसको भी चाँटा लगा है, इसको भी उतना ही कष्ट होगा। हम भूखे थे तो हमें कैसी तकलीफ हुई? उसी प्रकार जब आप भूखे रहते हैं तो हमें उसी दुःख का अनुभव होना चाहिए। जब हमारी बुराई की जाती है तो हमें कितनी घबराहट होती है। अगर आपकी बुराई हो रही हो तो मालूम पड़ने पर हमें महसूस होना चाहिए कि आपको कितनी मुश्किल हो रही होगी।

इस प्रकार से दूसरों के सुख-दुःखों और कष्टों में एकता की भावना स्थापित कर लेना, समभावना स्थापित कर लेना, यह ध्यान योगी का सबसे उत्तम लक्ष्य है। दूसरे का चाहे सुख हो अथवा दुख हो, दोनों को ध्यान योगी अपनी आत्मा के ही समान जानता है। दूसरों के सुख को अपना सुख मानता है, दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानता है। दूसरो की आपत्ति को अपनी आपत्ति मानता है और दूसरों की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति मानता है। इसका यह मतलब नहीं कि सम्पत्ति छीन लेगा। इसका मतलब यह होता है कि दूसरों को सम्पत्ति मिलने से उसे वही आनन्द होता है जो सम्पत्ति के मालिक को होता है। इसको कहते हैं आत्मौपम्येन–आत्मा के ही समान, अपने ही समान। चाहे सुख हो या दुःख, दोनों ही अवस्थाओं में। यह ध्यान के द्वारा सिद्ध होने वाली इतनी बड़ी सामाजिक कल्पना है कि अगर सचमुच में ऐसा हो जाए तो मानव समाज में नवीन क्रान्ति की स्थापना हो सकती है और एक नये समाज का निर्माण हो सकता है। यह गीता के समाज की कल्पना है।

–1967, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर

तंत्र और वेदान्त

चेतना की विकास-यात्रा में मानव मन अनेक स्तरों से गुजरता है। एक बच्चे और एक वयस्क व्यक्ति के अनुभव एक जैसे नहीं हो सकते। तंत्र चेतना के विकास की प्रक्रिया है, जबकि वेदान्त इस विषय का अनुभव कहलाता है। साधना और उसकी परिणतिस्वरूप आत्म-साक्षात्कार के बीच जो सम्बन्ध है, ठीक वही सम्बन्ध तंत्र और वेदान्त के बीच भी होता है।

तंत्र में द्वैत सिद्धान्त को माना जाता है, जबकि वेदान्त में अद्वैत को। वेदान्त में द्वैत भाव नहीं होता, मात्र एक परमतत्त्व होता है। जब सांसारिक चेतना का पूरी तरह विलोप होता है तब अद्वैत का अनुभव होता है। अद्वैत दर्शन का आधार विशुद्ध एकत्व है।

अगर आप वेदान्त शब्द का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि यह 'वेद' और 'अन्त' शब्दों से मिलकर बना है। यहाँ वेद का तात्पर्य ज्ञान और सजगता की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है, तथा 'अन्त' का अर्थ चरम परिणति होता है। आप किसी विषय को आत्मसात् करने के लिये जो प्रयत्न करते हैं, उसे वेद कहा जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में वेद उच्च अभिव्यक्त ज्ञान के प्रतीक थे। जैसे यह मान्यता है कि बाइबिल, कुरान, ज़ेन्द-अवस्ता आदि स्वत: अभिव्यक्त हुए थे, ठीक वैसे ही प्रत्येक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति के जीवन में ज्ञान की अभिव्यक्ति स्वत: होती है और वही वेद का आधार है। इस प्रकार वेदान्त का अर्थ ज्ञान की चरम परिणति है।

जीवन में जब आप किसी आध्यात्मिक प्रक्रिया से गुजरते हैं तो आपको अनेक मानसिक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। किसी को ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, किसी को प्रकाश दिखता है और कुछ को कुण्डलिनी जागरण के अनुभव होते हैं। ये सब अनुभव अपने में अस्थायी होते हैं, लेकिन एक क्षण ऐसा भी आता है जब साधक को अन्तिम निरपेक्ष अनुभव होता है। इसे वेदान्ती अनुभव कहते हैं।

वेदान्त-दर्शन की पृष्ठभूमि का निर्माण उपनिषदों से होता है। यदि वेदान्त को सहज ढंग से समझना है, तो यह कह सकते हैं कि जो एक है, वह अन्तिम तथा परिपूर्ण है। उसकी बहुलता को उसका विस्तार कहते हैं– *'एकोऽहं बहुस्याम्'*। दूसरी ओर, तंत्र अन्तिम परिपूर्ण अनुभव की चर्चा नहीं करता, वह तो उस चरम लक्ष्य की प्राप्ति की प्रक्रिया बताता है। तंत्र में शिव और शक्ति का द्वैत सिद्धान्त प्रमुख है। जिस प्रकार हठयोग में इड़ा चित्त को तथा पिंगला प्राण को प्रतिपादित करती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्माण्डीय तल पर शिव समग्र चेतना तथा शक्ति समग्र ऊर्जा के प्रतीक कहलाते हैं।

शिव और शक्ति के बीच जो संयोग स्थापित होता है उसे अन्तिम अनुभव कहते हैं। इसका तात्पर्य यह कि हमें आध्यात्मिक जीवन में जो भी अनुभव होते हैं वे हमारे भीतर इड़ा और पिंगला अर्थात् धनात्मक और ऋणात्मक ऊर्जाओं के संयोग का परिणाम होते हैं। दर्शन की भाषा में हम कह सकते हैं कि हमें जो भी आध्यात्मिक अनुभव होते हैं वे द्वैत से उत्पन्न होते हैं। आप प्रकाश देखें, ध्वनियाँ सुनें या आपको कोई भी अन्य आध्यात्मिक अनुभव क्यों न हो, वह द्वैत की ही उत्पत्ति होगा, क्योंकि अद्वैत से कोई उत्पत्ति संभव नहीं।

इस प्रकार हमें जो भी इन्द्रियजन्य अथवा आध्यात्मिक अनुभव होते हैं उन्हें अन्तिम नहीं कह सकते। किसी सिद्ध पुरुष या पैगम्बर के अनुभव भी उसके भीतर दो विपरीत ऊर्जाओं की परस्पर प्रतिक्रिया के परिणाम होते हैं। मनुष्य के समस्त अनुभवों का आधार उसकी चेतना होती है। इन अनुभवों को इन्द्रियों द्वारा पोषण मिलता है। जब मन और इन्द्रियों की आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया होती है तो अनेक असली-नकली अनुभव होते हैं। यदि आपका मन शुद्ध है तथा इन्द्रियाँ नियंत्रण में हैं तो आपको जो अनुभव होंगे, वे स्थायी होंगे तथा आप उन्हें समझ सकेंगे। फिर भी उन्हें अन्तिम अनुभव नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत यदि आपकी इन्द्रियाँ अनियन्त्रित हैं, मन मलिन है, तो आपके अनुभव त्रुटिपूर्ण होंगे।

मूलत: तंत्र और वेदान्त को दो विभिन्न परम्पराओं के रूप में देखा जाता है, लेकिन जब उन्हें मानवीय अनुभवों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाता है तब उन्हें एक-दूसरे से सम्बन्धित समझना चाहिये। जैसे, छोटी कक्षाओं में विज्ञान का कोई सिद्धान्त सिखाया जाता है, लेकिन जब छात्र ऊँची कक्षाओं में जाता है तो उसे सिखाते हैं कि पहले वाला सिद्धान्त सही नहीं है, नया सिद्धान्त सही है। अब

प्रश्न यह उठता है कि यदि प्राथमिक स्तर पर सिखाई गई बातें सही नहीं हैं तो हम अपने बच्चों को क्यों सिखाते हैं? इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि ज्ञान के दो पक्ष होते हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष।

आध्यात्मिक जीवन में भी जब तक आप मन और इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करते हैं, सापेक्ष ज्ञान आवश्यक होता है। परन्तु जैसे ही आप मन तथा इन्द्रियों के परे चले जाते हैं, निरपेक्ष अर्थात् अन्तिम ज्ञान का उदय होता है। भले ही अन्तिम सत्य पूर्ण एवं निरपेक्ष है, पर आप ज्ञान की सापेक्ष प्रक्रियाओं की आवश्यकता को नकार नहीं सकते। जिस प्रकार आपको मकान की छत पर पहुँचने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अन्तिम अनुभव की प्राप्ति के लिये आपको सापेक्ष अनुभव की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। द्वैतवादी तंत्र तथा अद्वैतवादी वेदान्त में यही सम्बन्ध है।

अनेक विद्वानों को इसे समझने में कठिनाई अनुभव होती है। वे मानते हैं कि यदि द्वैत का अस्तित्व है तो वह हमेशा विद्यमान रहना चाहिए, और इसके विपरीत यदि अद्वैत का अस्तित्व है तो वह भी हमेशा विद्यमान रहना चाहिए। परन्तु ऐसा सोचना त्रुटिपूर्ण है।

जब हम कहते हैं कि अन्तिम परिपूर्ण सत्ता केवल एक है, यह 'एक' कोई सीमित इकाई नहीं होती। वह प्रत्येक वस्तु का समग्र रूप होता है, जिसे संस्कृत में पूर्ण कहते हैं। आपने ईशावास्य उपनिषद् का यह विख्यात मंत्र सुना होगा—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

इसे गणित की भाषा में इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि अनन्त में अनन्त जोड़ा जाए तो योगफल अनन्त होता है और यदि अनन्त में से अनन्त को घटाया जाए तो भी अनन्त ही शेष बचता है। तंत्र और वेदान्त के बीच यही सम्बन्ध है।

—'योग प्रदीप-2' से उद्धृत

तंत्र-शास्त्र का मार्ग हर मनुष्य के लिये सुगम और सरल है। इसमें यह करो अथवा वह करो का झगड़ा नहीं पाया जाता। हर स्तर के लोगों के लिए उपयुक्त साधनाएँ यहाँ आपको मिलेंगी। आप चाहे माँसाहारी हों या शाकाहारी, ब्रह्मचारी हों या गृहस्थ, उच्च-कुल में जन्मे हों या साधारण कुल में, मोक्ष आपका लक्ष्य हो या सिद्धियाँ, सकाम हों या निष्काम, केवल तंत्र-शास्त्र में ही आपको अपने लायक साधना मिल सकती है।

— स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान कैसे करें

ध्यान के उपयोगी प्रभावों से कौन अवगत नहीं है? ध्यान पर बहुत सारी पुस्तकें उपलब्ध हैं और दुनिया भर के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और प्राय: हर क्षेत्र में काम करने वाले लोग ध्यान पर चर्चा करते रहते हैं। कई देशों में ध्यान के प्रभाव पर प्रयोग चल रहे हैं। शोधकर्त्ताओं का मानना है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त यह बड़ी प्रभावशाली विधि है। आवश्यकता इस बात की है कि हम इसका प्रयोग जान लें।

योग और तंत्र-दर्शन में मानसिक शान्ति और मानसिक शिथिलीकरण को मन की निष्क्रिय अवस्था नहीं माना जाता है। शान्ति और साम्यावस्था मन की सक्रिय अवस्थाएँ हैं। इसे ख्याल में रखना है। यह मान कर चलें कि ध्यान मन की निष्क्रिय अवस्था नहीं है। निष्क्रिय भाव से ध्यान का अभ्यास करने पर सम्मोहन की अवस्था प्राप्त होती है, जबकि ध्यान से सक्रियता उत्पन्न होती है। इसलिए मैं जब ध्यान योग की चर्चा करता हूँ तो मेरा तात्पर्य मन की निष्क्रियता से कतई नहीं होता।

ध्यान के दौरान खोई शक्ति को पुन: प्राप्त कर, प्राण-शक्ति को संजोकर और स्नायु-संस्थान को विश्राम देकर हम बेहतर सोचने, बेहतर महसूस करने और बेहतर काम करने की क्षमता प्राप्त करते हैं। अब महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ध्यान करें कैसे? आगे मैं यही बताने जा रहा हूँ।

मानसिक वृत्तियों का दमन

बेहतर ध्यान के लिए विविध उपाय और विधियाँ बताई गई हैं। विश्व भर में मनीषियों और योग आचार्यों द्वारा इन विधियों और प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका में ध्यान-योग के शिक्षण हेतु हजारों संस्थाएँ कार्यरत हैं। प्रत्येक कक्षा, प्रत्येक घण्टे या आधे घण्टे के शिक्षण के लिए लोग वहाँ अपने आधे हफ्ते की आमदनी खर्च कर देते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि योग-शिक्षण प्राप्त करने वाले लोग मूर्ख हैं या योग-शिक्षक ठग हैं। चूँकि ध्यान द्वारा उनके दैनिक जीवन में, उनके सामाजिक जीवन में, उनके व्यावसायिक जीवन में, उनके भावनात्मक जीवन में, उनके व्यक्तिगत जीवन में, उनके आध्यात्मिक जीवन में और यहाँ तक कि उनके यौन संबंधों में बेहतर अनुभव प्राप्त हुए हैं, इसलिए वे योग केन्द्रों में जाने लगे हैं और ध्यान योग के प्रति उनका रुझान बढ़ा है।

अधिकतर योग शिक्षक वृत्तियों के दमन और नियंत्रण द्वारा ध्यान का शिक्षण प्रदान करते हैं। यह एक विधि है। जब हम किसी बिन्दु या पदार्थ विशेष पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं तो हमें उसी पर चिन्तन करना चाहिए। उसके अतिरिक्त हमारे चिन्तन में कोई दूसरा विषय आता है तो हमें उसे खारिज कर

देना चाहिए। इस ध्यान-विधि में ध्यान से इतर वस्तुओं को खारिज कर दिया जाता है, मन की इतर वृत्तियों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया जाता है। इस प्रकार आप उसी वस्तु या विषय पर अपना ध्यान कायम रखते हैं जिस पर ध्यान करने का आपने निश्चय कर रखा है। उसके बाहर का कोई विचार या विषय आपके लिए अवांछित विषय हो जाता है। आमतौर से संसार भर में ध्यान की यही विधि प्रचलित है।

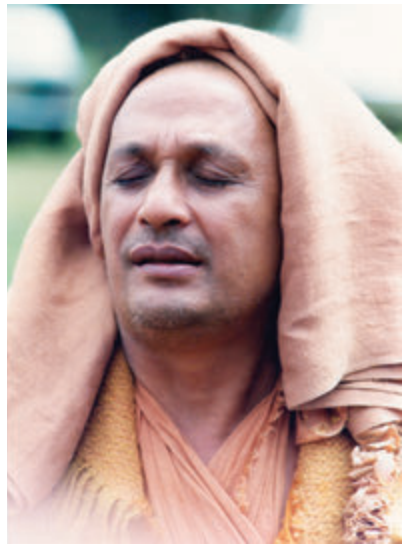

मैं ध्यान की इस विधि से असहमत नहीं हूँ, परन्तु अशान्त मन के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है। यह विधि उन साधकों के लिए उपयोगी है जिनका मन बहुत हद तक संतुलित और शान्त हो चुका है, जो रजोगुण की सीमा को पार कर सत्त्वगुण की सीमा में प्रवेश कर गए हैं।

तीन गुण

मानव मन, चेतना एवं व्यक्तित्व का विभाजन तीन गुणों के अनुसार किया गया है। कुछ लोग बड़े शान्त और स्थिर होते हैं। वे किसी भी परिस्थिति के साथ तालमेल कर सकते हैं। यह सत्त्वगुणी लोगों की कोटि है। कुछ लोग अशान्त, अधीर, चिन्तित और चंचल प्रकृति के होते हैं। इस स्वभाव के लोगों की एक अलग कोटि है जिसे रजोगुणी कहते हैं। उसके बाद लोगों की तीसरी कोटि है जिसे तमोगुणी कहते हैं। वे आलसी, दीर्घसूत्री और अकर्मण्य होते हैं।

इस प्रकार मोटे तौर पर मन के तीन गुण हैं और इन तीनों के संघटन से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कुछ लोगों में तामसिक गुण की प्रधानता होती है, पर साथ ही उनमें कुछ राजसिक और सात्त्विक गुण भी होते हैं। कुछ लोग मुख्यत: सात्त्विक होते हैं, पर उनमें किञ्चित राजसिक और तामसिक गुण भी होते हैं। कुछ में राजसिक गुण की प्रधानता होती है, पर साथ-साथ उनमें सात्त्विक और तामसिक गुणों का अंश भी रहता है। इन गुणों के संयोग के अनुसार ध्यान की क्रियाओं का चुनाव करना चाहिए। यदि क्रियाओं के चुनाव के समय इन गुणों की मात्रा पर ध्यान नहीं दिया गया तो कठिनाइयाँ आती हैं।

कई बार ध्यान की साधना में साधक अन्तर्मुखी हो जाता है और भूल जाता है कि बाह्य जगत् से उसका संबंध क्या और कैसा हो। ध्यान करने के बाद वह अकारण

चिड़चिड़ा हो जाता है, क्रुद्ध हो जाता है। ऐसा क्यों? यह ध्यान के कारण नहीं, बल्कि ध्यान की मात्रा में गड़बड़ी के कारण होता है। ध्यान का नुस्खा गलत होने के कारण चिड़चिड़ापन या क्रोध आता है। इसलिए योगाभ्यास मन के क्रम-विकास के स्तर को ध्यान में रखकर ही करना ठीक रहता है।

मानसिक विकास की अवस्थाएँ

योग पद्धति के अनुसार मन का विकास-क्रम चलता रहता है। पहली अवस्था में शारीरिक विकास होता है—पहले बाल्यावस्था, फिर युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था और अन्त में मृत्यु। ये शारीरिक विकास की अवस्थाएँ हैं। इसी प्रकार मन का विकास होता है और उसकी भी कई अवस्थाएँ हैं।

मन की प्राथमिक अवस्था मूढता है। स्थूल पदार्थ से प्रकट होकर विकास-क्रम के प्रारंभिक चरण में मन मूढ और मंद था। तब विकसित होकर वह क्षिप्त हो गया, खण्डित हो गया। बंदरों का खण्डित मन होता है। वे किसी वस्तु को उठाते हैं, कुछ क्षण उसे ऊपर-नीचे देखते हैं और फिर फेंककर उसे भूल जाते हैं। इसे क्षिप्त या खण्डित मन कहा जाता है। मन एक घटना-क्रम से हटकर दूसरे घटना-क्रम में चला जाता है और पूर्व घटना को भूल जाता है। इस प्रकार का मन बंदरों में ही नहीं, मानव में भी होता है और मन की यह अवस्था होने पर उसे पागलखाने भेज दिया जाता है।

मन की मूढ और क्षिप्त अवस्था योग के अनुकूल नहीं है। यदि बंदर का मन क्षिप्त होता है, या अजगर का मन मूढ होता है तो कोई बात नहीं, क्योंकि उनका विकास उसी अवस्था तक हो पाया है। लेकिन ये मानव मन के सामान्य विकास की अवस्थाएँ नहीं हैं। इनके होने पर चिकित्सालय जाने की आवश्यकता हो जाती है।

यौगिक मन की अवस्था विक्षिप्त मन से प्रारंभ होती है। घड़ी के लोलक की तरह विक्षिप्त या दोलायमान मन आगे-पीछे डोलता रहता है। वह आगे जाता है और फिर पीछे लौट आता है। वह एक सीमित क्षेत्र में चलायमान रहता है। विक्षिप्त अवस्था में जब हम किसी विषय पर मन को एकाग्र करना चाहते हैं तो वह इधर-उधर भटककर फिर उसी वस्तु पर आ टिकता है। इसीलिए योग में हम क्षिप्त मन को इधर-उधर भटकने के लिए प्रेरित करते हैं, क्योंकि मन का विकास सीधे तौर पर नहीं हो सकता है। वह एकाएक किसी बिन्दु पर एकाग्र नहीं हो सकता। उसे पहले इधर-उधर डोलने के लिए छोड़ दिया जाता है और तब किसी बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है।

तीन महत्त्वपूर्ण नियंत्रण

मैं कुछ ऐसी क्रियाओं की चर्चा करूँगा जो आपके लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। वैसे योग में अभ्यास की सैकड़ों-हजारों विधियाँ प्रचलित हैं। ये विधियाँ किसके लिए

हैं? हम लाखों लोगों के लिए जो एक-दूसरे से थोड़े भिन्न हैं। हम एक जाति, एक धर्म, एक राष्ट्र के होते हुए भी विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार एक-दूसरे से थोड़े भिन्न हैं।

इसलिए विकास के आरंभिक दौर से लेकर आज तक योग की सैकड़ों-हजारों पद्धतियाँ प्रतिपादित की गईं। सभी विधियों को सीखना जरूरी नहीं है, पर कुछ विधियाँ बड़ी उपयोगी हैं। मेरी दृष्टि में ध्यान का अभ्यास आरंभ करते समय न सिर्फ मन को, बल्कि शरीर को भी विश्वास में लेने की आवश्यकता है। हम पहले शरीर का सहयोग प्राप्त करने लग जायें तो मन का सहयोग भी प्राप्त हो जाएगा।

शरीर के कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो मन को नियंत्रित करते हैं। श्वसन मन को नियंत्रित करता है। शरीर में हॉर्मोन का स्राव मन को नियंत्रित करता है। गांजा सेवन से क्या होता है? वह मन को प्रभावित करता है। यह बात अलग है कि उसका असर अस्थायी होता है, पर उसके प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। शरीर के तीन नियंत्रक तत्त्व हैं—हॉर्मोन का स्राव, मस्तिष्क तरंगें और श्वास। यदि इन तीनों की गति में समन्वय स्थापित हो जाए तो विचारों, समस्याओं या चिन्ताओं से निबटने की जरूरत नहीं होगी। इनके घात-प्रतिघात से ही मन विचलित होता है।

हॉर्मोन का स्राव

इन तीन घटकों में हॉर्मोन के स्राव को नियंत्रित करना सबसे कठिन है। हॉर्मोन की स्राव-प्रक्रिया को समझने और उसके अनुपात को विनियमित करने हेतु जानकार व्यक्ति की मदद की जरूरत होती है। एड्रेनलिन और थाइरौक्सिन के स्राव में अनुपात ठीक रहने से मन पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है। हठयोग, क्रियायोग आदि के द्वारा शरीरजन्य हॉर्मोनों के स्राव में समन्वय और संतुलन लाकर ध्यान को प्रभावी बनाना चाहेंगे तो भोजन शैली और यौन-आचार में संशोधन करना परमावश्यक होगा।

उदाहरणार्थ, खेचरी मुद्रा की एक क्रिया है जिसमें जिह्वा को लम्बा करके उसे नासिका-नली में प्रवेश कराया जाता है। फिर श्वास खींचकर कुंभक लगाया जाता है। जब जिह्वा का अग्रभाग कण्ठ के पृष्ठ भाग में प्रवेश करता है तो वह नासिका-नली के पिछले भाग में स्थित एक केन्द्र को स्पर्श करता है। उस स्पर्श जनित उत्तेजना का स्थानान्तरण मस्तिष्क के एक उच्चतर केन्द्र में हो जाता है जहाँ एक लघुग्रंथि अवस्थित है।

योग में उस ग्रंथि के स्राव को अमृत कहते हैं। वह एक शक्तिशाली स्राव है, हालाँकि उसकी मात्रा बहुत अल्प होती है। उस द्रव (अमृत) का स्राव आरंभ हो जाने पर मन सहसा शान्त हो जाता है, विचार लुप्त हो जाते हैं। हम खुली आँखों से संसार को देखते जाते हैं, पर मन की गतिविधि बंद कर दी जाती है। विषयों

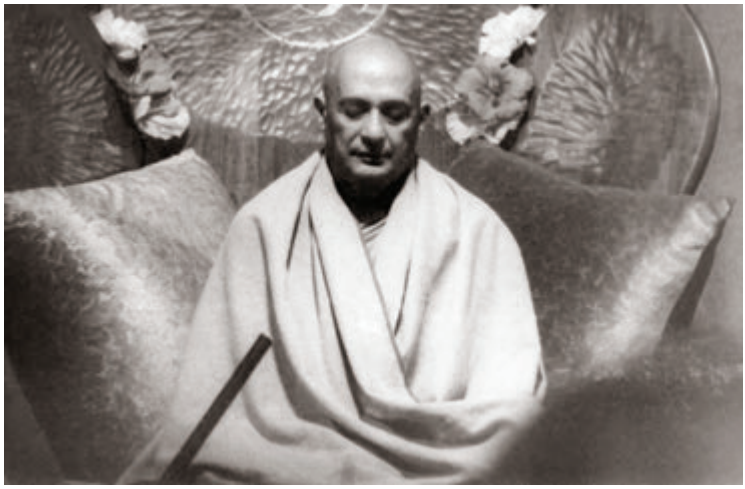

और वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, पर चिंतन-मनन नहीं होता। कारण स्पष्ट है। उस तरल पदार्थ के प्रभाव से मन शान्त हो जाता है।

यदि भौतिक शरीर को विश्वास में लेकर चलना है और इस तरह की साधना में आगे बढ़ना है तो कुछ नियम-निष्ठा का पालन अनिवार्यत: करना होगा। जो इन कठोर नियमों-निष्ठाओं का पालन नहीं कर सकते उनके लिए कई सरल उपाय हैं जिनकी सिद्धि में थोड़ा अधिक समय लगेगा।

श्वास और मन

उन सभी विधियों में सरलतम विधि श्वास-क्रिया से जुड़ी है। मैं उनमें से एक विधि, अजपा-जप के बारे में बताऊँगा जिसमें नादरूप में श्वास पर ख्याल रखना है। वह नाद क्या है? सोऽहं का मंत्र।

श्वास के साथ सोऽहं का अभ्यास करने में गहरा श्वसन नहीं होता है। इसमें स्वाभाविक श्वसन होता है और चूँकि इस प्रक्रिया के दौरान मन अधिकाधिक शान्त होता जाता है, श्वास की गति प्रति मिनट पन्द्रह से घटकर दस-आठ-छ: होती जाती है। साधक इसके लिए कोई प्रयास नहीं करता। यह स्वत: घटित होता है।

सामान्यत: प्रति मिनट पन्द्रह बार साँस का आना-जाना होता है। स्नायविक उत्तेजना के दौरान श्वसन की गति तीस से चालीस प्रति मिनट हो जाती है। गहरे ध्यान की अवस्था में प्रति मिनट छ: साँस लेते-छोड़ते हैं और समाधि की अवस्था में शायद प्रति मिनट श्वसन की एक ही आवृत्ति हो जाती है। ध्यान रहे, श्वसन-गति को बलपूर्वक नहीं घटाना है। ऐसा करने पर समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। यह सहजरूप से घटित होना चाहिए, क्योंकि मन और श्वास एक-दूसरे को प्रभावित

करते हैं। यदि श्वास अशान्त होगी तो मन अशान्त हो जाएगा और उसी प्रकार मन के अशान्त होने पर श्वसन प्रभावित होगा। मानसिक शान्ति से श्वसन-प्रक्रिया भी सरल और स्वाभाविक होती है।

दृष्टि की स्थिरता

ध्यान के प्रयास के साथ यह जरूरी है कि एकाग्रता के लिए कोई बिन्दु निश्चित कर लिया जाए, नहीं तो तीव्र नेत्र-चालन से मन विचलित हो जाएगा। नेत्रों में निरंतर कम्पन होते रहने के कारण मन में निर्मित होने वाली छवि बाधित हो जाती है। यह सूक्ष्म लेकिन ख्याल में रखने की चीज है। इसलिए मन में एकाग्रता लाने के पहले नेत्र गोलकों की स्थिरता आवश्यक है।

योगी जब स्वयं को उच्च अवस्था में ले जाता है तो शरीर और मन स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगते हैं, किन्तु अधिकतर मामलों में शरीर और मन की अंत:क्रिया चलती रहती है। इसी कारण किसी मूर्ति पर एकाग्रता साधने की प्रक्रिया में नेत्र-गोलकों के गतिशील रहने से व्यवधान होता है। उनको स्थिर करना जरूरी है। एकाग्रता का अभ्यास करते समय मन को नासिकाग्र अथवा भ्रूमध्य पर टिकाना चाहिए। कुछ लोगों के लिए भ्रूमध्य पर मन को स्थिर करना सरल है और कुछ को नासिकाग्र पर।

भारतीय नारियाँ भ्रूमध्य में टीका लगाती हैं। वे इसे सुहाग-चिह्न मानती हैं, पर बात यह नहीं है। इसका उद्देश्य इस बिन्दु पर निरंतर दबाव बनाये रखना है ताकि वहाँ पर ख्याल बना रहे और नेत्र-गोलक स्थिर रहें। इसलिए भारतीय नारियों के नेत्र अचंचल और शान्त होते हैं। यह योगाभ्यास के कारण नहीं, बल्कि भ्रूमध्य पर बिन्दी के दबाव के कारण संभव होता है।

भ्रूमध्य पर दबाव के कारण नेत्र-गोलक एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाते हैं और सर्वदा अचंचल और शान्त रहते हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है। इसलिए श्वसन-क्रिया पर ख्याल रखने का अभ्यास करते समय भ्रूमध्य अथवा नासिकाग्र पर दृष्टि रखने का अभ्यास भी करना चाहिए।

एकाग्रता का अभ्यास

अजपा-जप के प्रथम चरण में श्वास के साथ 'सोऽहं' मंत्र का मानसिक जप किया जाता है। श्वास लेते हुए 'सो' और श्वास छोड़ते हुए 'हं' का जाप करते हैं। कुछ दिनों के बाद मन के परिपथ को बदल दिया जाता है। प्राण के परिपथ को नहीं बदलना है, चेतना के परिपथ को बदलना है। यह परिपथ-परिवर्तन है क्या? 'सोऽहं' के स्थान पर 'हं सो' कहना है। इससे श्वसन-प्रणाली में कोई परिर्वतन नहीं होता, श्वास के प्रति जागरूकता में भी अन्तर नहीं पड़ता। अंतर बस इतना है कि सोऽहं के बदले 'हं-सो' जपते हैं। 'सोऽहं' प्रथम परिपथ है और 'हं-सो' द्वितीय।

कुछ समय तक यह जप करने पर साधक महसूस करता है कि मन में अद्‌भुत साम्य का उदय हो रहा है। मन की साम्यावस्था प्राप्त होते ही घण्टी बजने जैसा संकेत होता है। वह संकेत मिलते ही अजपा-जप बंद कर एकाग्रता का अभ्यास शुरू कर देना चाहिए।

अभी तक एकाग्रता का अभ्यास नहीं, एकाग्रता विकसित करने की चेष्टा की जा रही थी। एकाग्रता के विकसित और मानसिक साम्यावस्था प्राप्त हो जाने पर एक संकेत प्राप्त होता है। साधक का बाह्य जगत् से सम्पर्क टूट जाता है और अन्तर्जगत् में कुछ दिखने लगता है। वह फूल, रंग, सूर्य का प्रकाश, चन्द्र, घोड़ा या और कोई भी दृश्य हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह किसी दिव्य पुरुष या गुरु की आकृति हो। कोई ऐसी आकृति इन्द्रियातीत आकाश में उभरेगी जैसे हम स्वप्न में देखते हैं। जिस क्षण वह दिव्य अनुभूति, अलौकिक संतुलन प्राप्त हो, साधक को एकाग्रता का अभ्यास आरंभ कर देना चाहिए। एकाग्रता का अभ्यास अपने प्रतीक, अपने गुरु, अपने इष्ट देवता या किसी मूर्ति पर करना चाहिए। मान लीजिए कि आपका प्रतीक पूर्ण चन्द्र है, तब आप पूर्ण चन्द्र पर अपने चिन्तन को केन्द्रित करेंगे। आप को पूर्ण चन्द्र का दर्शन वैसे ही होगा जैसे आप खुली आँखों से उसे देख रहे हों या पूर्ण चेतना के साथ स्वप्न देख रहे हों।

पूर्ण चन्द्र का दर्शन ज्यादा देर नहीं, चंद क्षणों के लिए ही होगा। उस एकाग्रता के अनुभव को संजोकर रखना सरल नहीं है। अचानक मन विचलित हो जाता है और साधक विचारों के बवण्डर में फँस जाता है। यह जानते हुए भी कि मन भटक रहा है, उसे समेटना कठिन हो जाता है। इस प्रक्रिया में एक बार एकाग्रता भंग हो जाती है तो पुन: आरंभ करना मुश्किल हो जाता है। उस दशा में अभ्यास बंद कर अपने दैनिक कार्य में लग जाना चाहिए।

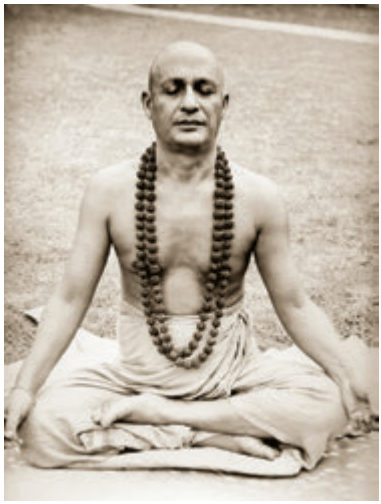

उस दिव्य अनुभूति के क्षेत्र में ज्यादा देर रह सकते हैं। बीस-तीस सेकेण्ड में यह अनुभूति लुप्त हो जाती है, किन्तु ऐसा लगता है कि घण्टों तक उसका असर कायम है। इसका कारण यह है कि मन के भीतर का समय-अनुपात और बाहर का समय-अनुपात भिन्न होता है। भीतर का एक घण्टा बाहर के एक सेकेण्ड के बराबर हो सकता है।

काल के अन्तर को समझ रहे हैं? मैं समय के सापेक्षवाद की बात कर रहा हूँ। बाहर और भीतर का समय-बोध समान

नहीं होता। बाह्य आकलन के अनुसार साधक उस दिव्य अनुभूति-लोक में कुछ क्षणों के लिए हो सकता है, पर उस दिव्य लोक की गणना में वह समय कई घण्टों के बराबर हो सकता है। इसलिए इस बात की चिन्ता नहीं करनी है कि दिव्य अनुभूति के लोक में मात्र दस सेकेण्ड के लिए रहे। एक सेकेण्ड की दिव्य अनुभूति भी विरल है।

प्राणायाम–एक गत्यात्मक ध्यान

अभी मैंने ध्यान की जिस विधि की चर्चा की है वह उन लोगों के लिए उपयोगी है जो मन को वश में कर सकते हैं। दूसरी विधि उन लोगों के लिए है जिनका मन उद्दण्ड, दम्भपूर्ण, रोषपूर्ण और उच्छृंखल है। ऐसे लोगों को इस तरह का अभ्यास चुनना चाहिए जिसमें मन की तन्मयता आवश्यक न हो। इस अभ्यास में मन को परे रखा जा सकता है। प्राणायाम की विधियाँ इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयोगी हैं।

इस समय मैं प्राणायाम की सभी विधियों की चर्चा नहीं करने जा रहा हूँ, सिर्फ नाड़ी शोधन प्राणायाम के बारे में बताऊँगा। बायीं नासिका से साँस लें, दाहिने हाथ के अँगूठे और अनामिका से साँस को रोकें, दायीं नासिका से साँस छोड़ें, बाहर साँस रोकें। दाहिनी नासिका से साँस लें, साँस को भीतर रोकें, बायीं नासिका से साँस छोड़ें, बाहर साँस को रोकें। यह एक आवृत्ति हुई। इसकी पाँच आवृत्तियाँ करें। मैंने प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन किया है, यह पूरी प्रक्रिया नहीं है।

प्राणायाम आरंभ करने के पूर्व बंध सीखना जरूरी है। बंध का मतलब बाँधना, बंद करना, संकोचन करना। तीन बंध हैं जिनका अभ्यास पूर्णरूप से कर लेना चाहिए। एक है जालंधर बंध, ठुड्डी को बाँधना, दूसरा है उड्डियान बंध, उदर को संकुचित करना और तीसरा है मूल बंध, मूलाधार का संकोचन। इन तीनों बंधों का सीधा प्रभाव नाड़ी संस्थान पर पड़ता है और इसके अभ्यास से शरीर की प्राण-ऊर्जा का विकास होता है। इसलिए प्राणायाम और ध्यान आरंभ करने के पूर्व बंधों का अभ्यास पूरा कर लेना चाहिए।

श्वसन और बंधों के बीच समन्वय स्थापित कर लेने के बाद उनके बीच अनुपात की बात आती है। यह बहुत जरूरी है क्योंकि यह मस्तिष्क के बायें और दायें गोलार्द्ध से सीधा संबंध रखता है। इसका संबंध अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ी-संस्थान से भी है। प्राणायाम में सही अनुपात की आवश्यकता प्राण ऊर्जा की प्राप्ति के लिए ही नहीं, बल्कि मस्तिष्क, नाड़ी संस्थान, हृदय और अन्य अंगों के लाभ के लिए भी है।

नाड़ी शोधन की पाँच आवृत्तियाँ ही करें, अधिक नहीं। आरंभ में पाँच आवृत्तियाँ पाँच मिनट में पूरी हो जायेंगी, पर बाद में इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी होने में तीन घण्टे लग जायेंगे। तब पाँच आवृत्तियों की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। एक आवृत्ति पूरी करने के बाद एकाग्रता का अभ्यास आरंभ कर सकते हैं।

प्राणायाम के साथ एकाग्रता

दो आवृत्तियों के बीच विराम होना चाहिए। एक आवृत्ति पूरी करने के बाद अपने चुने हुए प्रतीक पर ध्यान करना चाहिए। यहाँ दिव्य अनुभूति की बात नहीं कर रहा हूँ। दिव्य अनुभूति ध्यान के दौरान एक संकेत रूप में आती है। अभी मैं जिस प्रक्रिया की बात कर रहा हूँ उसमें यह संकेत नहीं आता है, उसे आना भी नहीं चाहिए। संकेत आने पर प्राणायाम विफल हो जाएगा, क्योंकि जैसा मैंने पूर्व में कहा है, यह अभ्यास वैसे लोगों के लिए है जिनका मन उद्दण्ड, उच्छृंखल, दम्भी और बिगड़ैल है।

प्राणायाम की एक आवृत्ति पूरी करने के बाद साधक को आँखें बंद कर शरीर को स्थिर कर लेना चाहिए। तब ध्यान आंरभ करना चाहिए। अपने चयनित प्रतीक पर एकाग्रता साधनी चाहिए। एक-दो मिनट तक अभ्यास करने के बाद आँखें खोलकर प्राणायाम की दूसरी आवृत्ति आरंभ करनी चाहिए। इस प्रकार यदि प्राणायाम की पाँच आवृत्तियाँ करते हैं तो एकाग्रता की भी पाँच आवृत्तियाँ होनी चाहिए।

ध्यान का महत्त्व

ये कुछ विधियाँ मैंने बताईं। और भी अनेक विधियाँ हैं। अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं कहना चाहूँगा कि भोजन से अधिक महत्त्व ध्यान का है। निद्रा से अधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान है। जीवन के किसी भी आमोद-प्रमोद से अधिक आवश्यकता ध्यान की है। किसी भी तरह, किसी आकस्मिक कारण से, किसी की कृपा से अथवा सौभाग्य से यदि ध्यान के क्षेत्र में आपका एक कदम भी बढ़ जाये तो आप मानव नहीं, महामानव हैं।

ध्यान रहे, सिर्फ आँखें बंद कर, विचार-तरंगों को रोककर स्वप्नावस्था में प्रवेश कर जाना ध्यान नहीं है। बहुधा ध्यान के बदले लोग सम्मोहन की अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वे ध्यान की साधना नहीं करते, सम्मोहन का अभ्यास करते हैं। वे मन को पददलित कर ध्यान को उपलब्ध करना चाहते हैं, जैसे लोग प्राय: अपने बच्चों के साथ करते हैं। कृपया वैसा मत करें।

यदि आप ध्यान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तो प्रतिदिन कम-से-कम आधा घण्टा समय आपको ध्यानाभ्यास के लिए देना चाहिए। ध्यान हमारी अनुभूति की गुणवत्ता में रूपांतरण ला सकता है। दिव्यता की आदर्श अनुभूति ही नहीं, साधारण दैनिक जीवन की अनुभूति की गुणवत्ता में भी बदलाव ला सकता है। ध्यान द्वारा वांछित अनुभूति में वृद्धि और निम्न कोटि की अनुभूति में ह्रास लाया जा सकता है। परिवार में कोई दु:खद प्रसंग आने पर ध्यान द्वारा उसकी पीड़ा को कम किया जा सकता है और कोई सुखद प्रसंग आने पर आनन्दानुभूति की सघनता को बढ़ाया जा सकता है।

–'योग प्रदीप-5' से उद्धृत

जबलपुर गुरु पूर्णिमा के मेज़बान सिख बन्धु

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती

1981 में गुरु पूर्णिमा महोत्सव श्री स्वामीजी की उपस्थिति में जबलपुर में मनाया गया था। श्री स्वामीजी स्वयं, और हममें से अधिकतर भक्तगण महोत्सव आरंभ होने के एक दिन पूर्व ही जबलपुर पहुँच चुके थे। वहाँ के सिखों के गुरुद्वारा के प्रबंधन से जुड़े कुछ सिख बंधु श्री स्वामीजी से मिले और उनसे अनुरोध किया कि वे कुछ समय के लिए गुरुद्वारा में भी पधारने का कष्ट करें। श्री स्वामीजी ने अगली सुबह चार बजे का समय उन्हें दिया। बाद में हम भक्तों को भी निर्देश मिला कि हम सभी चार बजे गुरुद्वारा पहुँचें। स्वाभाविक ही था कि हमें ले जाने के लिए एक सरदार जी उपस्थित थे। हम सभी समय पर पहुँच गये।

श्री स्वामीजी का आगमन हुआ। पूरा हॉल हम भक्तों और सरदार बंधुओं से भर गया था। औपचारिकताओं के बाद श्री स्वामीजी का गुरु विषय पर प्रवचन हुआ और वह तो उच्चकोटि का होता ही था।

बाद में धन्यवाद-ज्ञापन के समय प्रमुख सरदार बंधु जी ने अचानक एक बहुत बड़ी घोषणा कर डाली। घोषणा यह थी कि चार दिवसीय योग महोत्सव में भाग लेने वाले सभी भक्तों के खान-पान की पूरी व्यवस्था, उसी दिन से वे और उनके साथी लोग संभालेंगे। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि जो भी खरीद आयोजकों ने की है, उसकी पूरी रकम भी वे अदा कर देंगे। साथ ही नाश्ता-खाना बनाने और खिलाने का कार्य भी वे स्वयं करेंगे।

हम सभी को सुखद आश्चर्य हो रहा था कि इन सरदार बंधुओं ने अचानक इतने बड़े खर्च और व्यवस्था का भार अपने ऊपर कैसे ले लिया। हमें एक ही बात समझ में आई कि श्री स्वामीजी के गुरुद्वारा में जाने मात्र से यह चमत्कार हो गया था।

इतना ही नहीं, हम सभी ने चार दिनों तक सरदार बंधुओं की खातिरदारी का भरपूर आनंद लिया। सभी लोग बड़े प्रेम से, भाव के साथ हमें खिलाते रहे, मानो हमें उन्होंने ही आमंत्रित किया हो इस महोत्सव में। यह इस तरह की संभवत: एकमात्र घटना रही होगी।

बच्चों के लिए योग की आवश्यकता

भारत में परम्परागत रूप से आठ से दस वर्ष की अवस्था में योग के अभ्यास सिखाये जाते हैं। बच्चों के लिए इस अवस्था में एक अनुष्ठान होता है जिसमें उन्हें सूर्य नमस्कार, नाड़ीशोधन प्राणायाम और गायत्री मंत्र की शिक्षा दी जाती है। यह परम्परा आज भी छोटे पैमाने पर प्रचलित है, किन्तु अब योग को औपचारिक शिक्षा पद्धति में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।

बच्चों की अनेक अस्पष्ट और अनभिव्यक्त समस्यायें होती हैं। वे अपनी समस्याओं को सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित नहीं होती और उनमें मनोविज्ञान का पर्याप्त ज्ञान भी नहीं रहता। इसलिए बच्चे सामान्य रूप से अपनी समस्याओं को अपने व्यवहार द्वारा प्रकट करते हैं और जब तक कोई मनोविश्लेषक बच्चों के व्यवहार का अध्ययन न करे, वह सही निदान नहीं कर सकता। अधिकतर माता-पिता के लिए यह अत्यन्त कठिन हो जाता है, क्योंकि वे मनोविश्लेषक नहीं होते। वे बच्चों की समस्याओं पर अपने ढंग से विचार करते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि बच्चा उद्दण्ड है और माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है, तो माता-पिता उस पर अवज्ञाकारी होने का ठप्पा लगा देंगे, पर वे उसकी अवज्ञा के कारणों की गहराई में नहीं जाएँगे। यदि बच्चा घर में टिकना नहीं चाहता है तो माता-पिता उसे आवारा कह देते हैं। एक मनोविश्लेषक ऐसे व्यवहार के वास्तविक कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है, लेकिन अधिकतर माता-पिता ऐसा नहीं कर सकते। इसका कारण यह नहीं कि वे विश्लेषण करना नहीं जानते, बल्कि इसलिए कि वे माता-पिता हैं। उनमें बच्चों के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह होता है।

मैंने पाया है कि सात से बारह वर्ष की उम्र में बच्चों की कुछ प्रवृत्तियों में असन्तुलन रहता है। शारीरिक विकास और मनोवैज्ञानिक विकास एक साथ पूरे नहीं होते। यहाँ मनोवैज्ञानिक से मेरा तात्पर्य मस्तिष्क, स्नायुतंत्र और अन्त:स्रावी तंत्र से है। कभी-कभी शारीरिक विकास मानसिक विकास से पहले हो जाता है, तो कभी मानसिक विकास शारीरिक विकास की अपेक्षा पहले होता है। बच्चों की समस्याओं का मूल कारण यह होता है।

बच्चों की समस्याओं को हमें नैतिकता और सदाचार के संदर्भ में समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे में एड्रिनल ग्रंथि का स्राव अधिक होता है तो बच्चा सदा भयभीत रहेगा। यदि उसके शिक्षक गम्भीर हैं, तो वह सदैव उनसे आशंकित और डरा रहेगा। उनके सामने नहीं जाना चाहेगा और

उनके विषयों में रुचि भी नहीं लेगा। इस स्थिति में समस्या का कारण नैतिकता या सदाचार से सम्बन्धित नहीं है। यह सामाजिक भी नहीं है, बल्कि यह पूर्णतया मनोकायिक है। इस स्थिति में हमें मात्र उस बच्चे के एड्रिनल स्राव में सन्तुलन लाना है। अनेक समस्यायें थायरॉयड ग्रंथि में असन्तुलन से भी उत्पन्न होती हैं। अगर हम बच्चों की समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो शरीर तंत्र में हॉर्मोनों के भावनात्मक प्रभावों का निश्चित रूप से अध्ययन करना होगा।

सात या आठ वर्ष की आयु में पीनियल ग्रन्थि का ह्रास होने लगता है और जब यह प्रक्रिया एक निश्चित सीमा तक बढ़ जाती है तब यौन हॉर्मोन शरीर में सक्रिय हो जाते हैं। पीनियल ग्रन्थि बच्चे में यौन-चेतना तथा सम्बद्ध भावनात्मक और मानसिक प्रक्रियाओं के तीव्र विकास को रोके रहती है। जैसे ही पीनियल ग्रन्थि का ह्रास पूरा हो जाता है, भावनात्मक विकास अत्यन्त तीव्र हो जाता है और बच्चे के लिए संतुलन बनाए रखना कठिन हो जाता है। बच्चे के जीवन में भावनात्मक संतुलन की समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यदि हम शारीरिक विकास की अपेक्षा भावनात्मक विकास को विलम्बित कर सकें तो बच्चे में स्थिरता बढ़ जाएगी। ऐसा करने के लिए हमें पीनियल ग्रन्थि का स्वास्थ्य ठीक रखना होगा और इसके लिए शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पीनियल ग्रन्थि को योग में आज्ञा चक्र के रूप में जाना जाता है। यह एक अत्यन्त छोटी ग्रन्थि है जो मस्तिष्क में मेडुला-ऑबलॉन्गाटा के शीर्ष पर अवस्थित है। यह एक ताले के समान कार्य करती है। जब तक पीनियल ग्रन्थि स्वस्थ है तब

तक अराजक यौन-व्यवहार नहीं होता। जब तक बच्चा अपने अन्दर यौन-चेतना की प्रतिक्रियाओं को संतुलित करने योग्य न हो जाए, यौन-चेतना विकसित नहीं होनी चाहिए। जब तक यौन-ऊर्जाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता बच्चे में नहीं आ जाती है तब तक इनके विकास से बच्चे को हानि होती है। कभी-कभी उसे डरावने, भयानक, बेतुके और भ्रामक स्वप्न आ सकते हैं। इसके साथ ही दैनिक जीवन में इन सजगताओं को दबाने के लिए वह ऐसे व्यवहार करता है जिसे बड़े लोग पसन्द नहीं करते। यौन-चेतना की समय से पूर्व परिपक्वता बच्चे के मन को लगभग तोड़ देती है। लड़कियों में जब यौन-हॉर्मोनों का स्राव प्रारम्भ होता है, स्तनग्रन्थि, डिम्ब ग्रन्थि और गर्भाशय, सब सक्रिय हो जाते हैं। अब यदि पीनियल ग्रन्थि बहुत पहले निष्क्रिय हो जाए तो समस्यायें प्रारम्भ हो जाती हैं, लड़की अशान्त हो जाती है, क्योंकि वह इस परिवर्तन को अभिव्यक्त करने हेतु शारीरिक रूप से परिपक्व नहीं होती है।

आन्तरिक रूप से आज्ञाचक्र को प्रभावित करने तथा यौन-परिपक्वता को विलम्बित करने के लिए शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करना लाभदायक होगा। अभ्यास को अधिक रुचिकर बनाने के लिए हम बच्चे को मानस दर्शन करने के लिए भी कहते हैं। इस अभ्यास में लगभग पचास चीजों के नाम लेते हैं और बच्चे को एक-एक कर उनका मानस दर्शन करने को कहते हैं। जैसे, लाल गुलाब, बहती हुई नदी, बर्फ से ढका पहाड़, चलती हुई कार, उड़ता हुआ हवाई जहाज, अमरूद का फल, मंदिर आदि का नाम लेते हैं और उन्हें देखते हुए बच्चा अपनी सजगता को बनाये रखता है।

मानस दर्शन की वस्तुओं में तीन प्रकार की चीजें रहती है। प्रथम श्रेणी में वे चीजें होती हैं जिन्हें बच्चे ने देखा है, दूसरी श्रेणी में वे वस्तुएँ होती हैं जिन्हें बच्चे ने पहले कभी नहीं देखा है और तीसरी श्रेणी में प्रेम और सौन्दर्य जैसी अमूर्त भावनाएँ होती हैं। यह अभ्यास न केवल बच्चों को मनोभावनात्मक सन्तुलन बनाये रखने में सहायता करता है, साथ ही यह उनके मनोदर्शन की क्षमता को बढ़ाता है। बाद में जब वह विद्यालय में भूगोल, इतिहास या गणित पढ़ता है उस समय उसका मन कल्पनाशील रहने के साथ-साथ चिन्तनशील भी रहता है।

यद्यपि इसके लिए हमारे पास ठोस वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं, फिर भी मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि योग का अभ्यास पीनियल ग्रन्थि को स्वस्थ बनाये रखने के साथ-साथ जीवन को अतिरिक्त आयु भी प्रदान करता है। इसीलिए हम भारत में बच्चों को सूर्य नमस्कार, नाड़ी-शोधन प्राणायाम, मंत्र तथा मानस दर्शन के साथ शाम्भवी मुद्रा सिखाते हैं।

–जुलाई 1978, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा–उन्मुक्त गगन का पंछी

पृष्ठ 24

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

यह संस्मरण है आकाश की एक परी, अमर्त्या का जो सत्यम् की दिव्य अभिभाविका है। सत्यम् के बचपन से लेकर उनके महाप्रयाण तक वह उनके जीवन पर करीबी नज़र रखती है। सत्यम् को जीवन में विभिन्न चुनौतियों का सामना करते और विविध चक्रव्यूहों से बचकर निकलते देख वह बड़ी विस्मित और हर्षित होती है। अमर्त्या का यह संस्मरण सत्यम् के जीवन का मानो एक संक्षिप्त इतिहास है, जिसमें उनके सुन्दर गुणों और प्रतिभाओं की छवि स्पष्ट रूप से झलकती है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की इस आधिकारिक वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में विभिन्न श्रेणियों की खोज सुविधा भी उपलब्ध है।

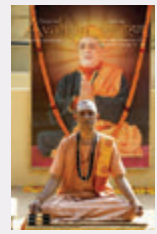

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13–15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

योगपीठ के सत्र एवं कार्यक्रम 2016

जनवरी 1	श्री हनुमान चालीसा पाठ (108 बार)
फरवरी 2–मई 29	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 9–12	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 13	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 21–27	योग कैप्सूल–श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 20–अप्रैल 3	योग कैप्सूल–पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी)
अप्रैल 24–30	योग कैप्सूल–पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
जुलाई 15–18	गुरु पूर्णिमा सत्संग कार्यक्रम
जुलाई 19	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 1–30	योग अनुदेशक सत्र (अंग्रेजी) (भारतीयों के लिए)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
सितम्बर 24–30	हठ योग–षट्कर्मों का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
अक्टूबर 1–30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3–जनवरी 29	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अंग्रेजी)
अक्टूबर 22–28	राज योग–आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 5–11	क्रिया योग–प्रारम्भिक (हिन्दी)
दिसम्बर 19–23	योग चक्र की तृतीय शृंखला (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।